शैक्षणिक संदर्भ

वर्ष: 17 अंक 96 (मूल क्रमांक 153)
जुलाई-अगस्त 2024 मूल्य: ₹ 50.00

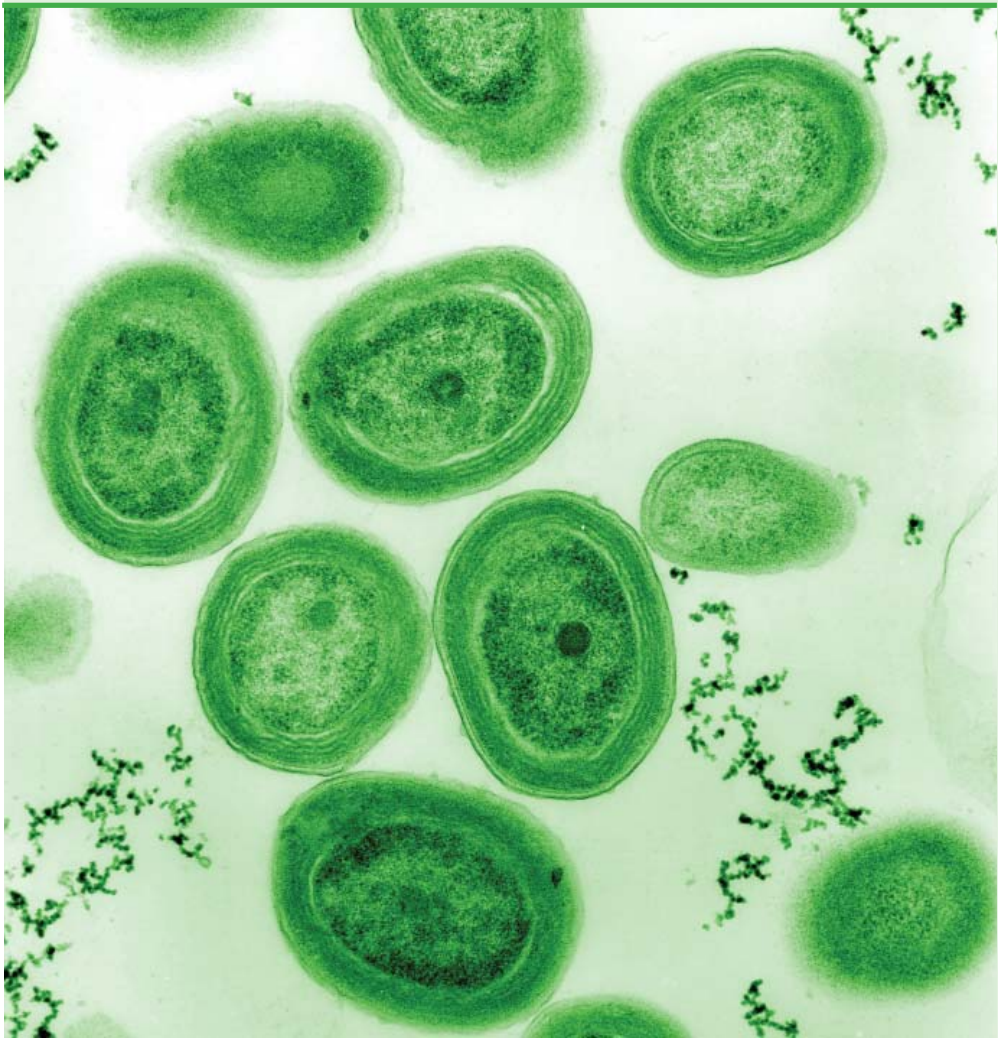

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर

सह-सम्पादक
पारुल सोनी

सहायक सम्पादक
अतुल वाधवानी

सम्पादकीय सहयोग
हिमांशु बावनकर

सम्पादकीय सलाहकार
सुशील जोशी
उमा सुधीर

आवरण
राकेश खत्री

वितरण: झनक राम साहू

सहयोग: कमलेश यादव

शैक्षणिक

संदर्भ

वर्ष: 17 अंक 96 (मूल क्रमांक 153)
जुलाई-अगस्त 2024

मूल्य: ₹ 50.00

एकलव्य फाउण्डेशन
जमनालाल बजाज परिसर
जाटखेड़ी, भोपाल-462 026 (म.प्र.)
फोन: +91 755 297 7770, 71, 72, 4200944
www.sandarbh.eklavya.in
सम्पादन: sandarbh@eklavya.in
वितरण: circulation@eklavya.in

अब *संदर्भ* आप तक पहुँचेगी रजिस्टर्ड पोस्ट से।

सदस्यता शुल्क	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
	450.00	1200.00	8000.00

मुखपृष्ठ: इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप से ली गई और छद्म-रंगों से रंगी गई *प्रोक्लोरोकोकस मरीनस* की तस्वीर। यह एक तरह के सायनोबैक्टीरिया हैं जो दुनिया की कुल ऑक्सीजन का एक बड़ा हिस्सा पैदा करने में योगदान देते हैं। प्रकाश संश्लेषण के ये महारथी क्या किसी जन्तु को यह प्रक्रिया करने के काबिल बनाने में हमारी मदद कर सकते हैं? जानिए डेबोरा और माइकल के लेख में, पृष्ठ 5 पर।

कवर 4: एक फ्रेंच व्यंग्य पत्रिका, ला *पेटीट ल्यून*, में छपा डार्विन का कार्टून जिसमें डार्विन एक बन्दर के रूप में 'विज्ञान के पेड़' (arbre de la science) पर लटके हैं। यह कार्टून डार्विन के सिद्धान्त (जहाँ वे तर्क करते हैं कि इन्सान और बन्दरों के पूर्वज एक ही प्रजाति के थे) को मज़ाकिया ढंग से चित्रित करता है। जानिए पूरी दुनिया में अपने काम से तहलका मचा देने वाले इस सादगी से भरे वैज्ञानिक के बारे में, पृष्ठ 18 पर।

यह अंक त्रिवेणी एजुकेशनल ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

LINK : कवर 1 - https://en.wikipedia.org/wiki/Cyanobacteria#/media/File:Prochlorococcus_marinus.jpg
कवर 3 - https://yaloveomk.shop/product_details/53234086.html
कवर 4 - https://en.wikipedia.org/wiki/Caricatures_of_Charles_Darwin_and_his_evolutionary_theory_in_19th-century_England#/media/File:Darwin_as_monkey_on_La_Petite_Lune.jpg

हमारा आगामी प्रकाशन

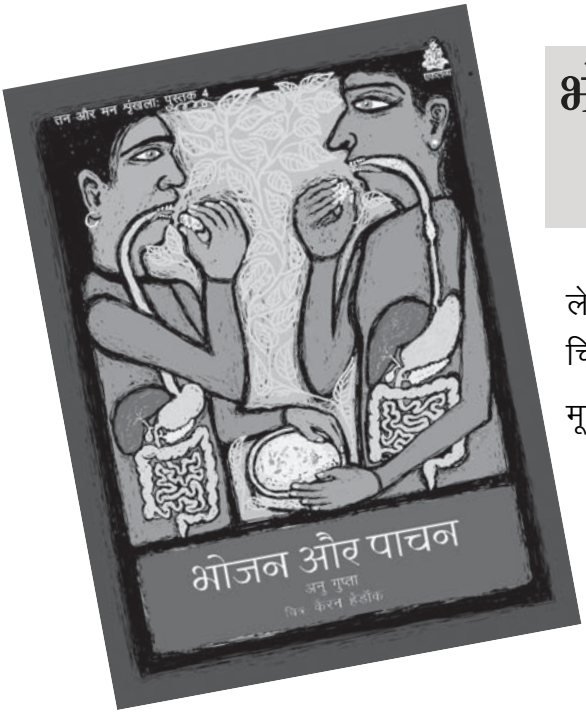

भोजन और पाचन

लेखन: अनु गुप्ता
चित्र: कैरन हैडॉक

मूल्य: ₹120

क्या हर तरह का भोजन हमारे लिए पौष्टिक है? हम जो भी खाते हैं वो कैसे पचता है? पाचन तंत्र में होने वाली आम गड़बड़ियों के लिए क्या किया जा सकता है?
भोजन, पाचन और कुपोषण से जुड़े ऐसे तमाम सवालों पर केन्द्रित यह किताब इनके जैविक से लेकर सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक आयामों की पड़ताल करती है।

अपनी प्रति बुक कराने के लिए सम्पर्क करें–

एकलव्य फाउंडेशन
जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (मप्र)
फोनः +91 **755 297 7770-71-72;** ईमेलः **pitara@eklavya.in**
www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

एकलव्य

क्या जन्तु भी प्रकाश संश्लेषण कर सकते हैं?

हम जानते हैं कि अपना भोजन बनाने के लिए पौधे प्रकाश संश्लेषण करते हैं। मगर विज्ञान और टेक्नोलॉजी की बढ़ती समझ के साथ, क्या यह मुमकिन हो सकता है कि हम इन्सान भी प्रकाश संश्लेषण कर सकें? खोज जारी है। इन्सान न सही, मगर ऐसे कई अन्य जन्तु तो हैं जो इस जटिल प्रक्रिया को अंजाम देने में सक्षम हैं। किस तरह इन्हें समझकर हम अन्य जीवों को भी प्रकाश संश्लेषण करवा सकते हैं, और क्या यह सब इतनी ज़हमत के लायक है भी – यह जानना रोचक होगा डेबोरा और माइकल के इस लेख में।

05

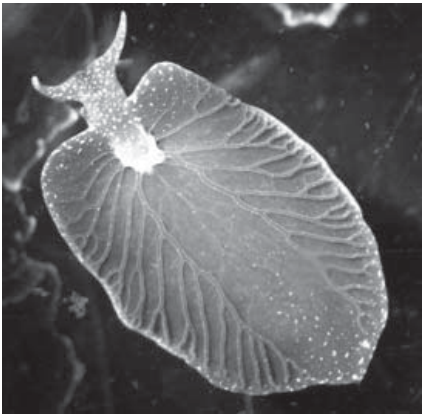

एक अच्छा शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम...

एक अच्छा शिक्षक कैसे तैयार होता है? बेशक, एक अच्छे शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम से। तो किन खूबियों और बारीकियों की दरकार होती है एक अच्छे शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम में? क्यों अहम है एक शिक्षक का प्रशिक्षण? ऐसे कार्यक्रमों पर किए जा रहे नीतिगत बदलावों के क्या खतरे हो सकते हैं? ऐसे कई ज़रूरी पहलुओं पर बात करता सुवासिनी का यह लेख सभी के लिए प्रासंगिक होगा, क्योंकि शिक्षा से जुड़े मसले सभी के लिए प्रासंगिक होने ही चाहिए।

66

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-96 (मूल अंक-153), जुलाई-अगस्त 2024

इस अंक में

05 | क्या जन्तु भी प्रकाश संश्लेषण कर सकते हैं?
डेबोरा मेक्केंज़ी और माइकल ला पेज

18 | आदमी दरअसल एक कीड़ा है!
हरिशंकर परसाई

25 | विज्ञान की सामान्य समझ और मानविकी... - भाग 2
हरजिन्दर सिंह 'लाल्टू'

41 | स्कूल का पहला दिन
कालू राम शर्मा

55 | वो नज़रिया
माधव केलकर

66 | एक अच्छा शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम कैसे तैयार होता है?
सुवासिनी अय्यर

75 | प्रतापगढ़ का आदमखोर
सैयद मुस्तफा सिराज़

84 | पतंग धागे से बँधी होने पर ऊपर उड़ती है...
सवालीराम

हमारा आगामी प्रकाशन

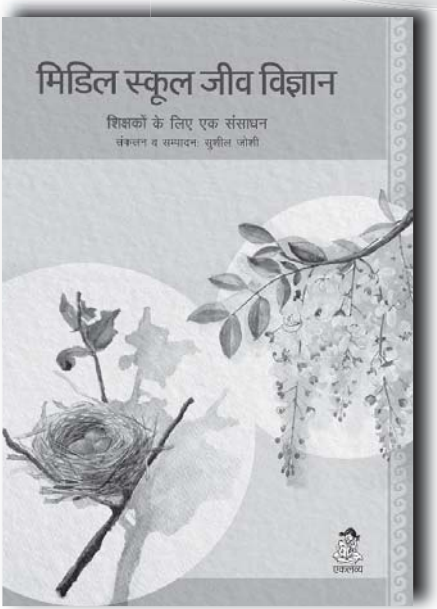

मिडिल स्कूल जीव विज्ञान

मूल्य: ₹ 285.00

यह किताब जीव विज्ञान जैसे जटिल विषय को सरल व आसान भाषा में प्रस्तुत करती है। इसमें दी गई गतिविधियाँ विद्यार्थियों को अपने आसपास की दुनिया को बारीकी-से समझने के अवसर देंगी। प्रयोगों और अवलोकन के माध्यम से उनमें अवधारणात्मक समझ भी विकसित करेंगी।

सैद्धान्तिक के साथ-साथ व्यवहारिक ज्ञान पर आधारित यह किताब न सिर्फ विद्यार्थियों के लिए बल्कि शिक्षकों के लिए भी एक उपयोगी संसाधन सामग्री है।

अपनी प्रति बुक कराने के लिए सम्पर्क करें...

एकलव्य फाउंडेशन

जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (मप्र)

फोनः **+91 755 297 7770-71-72;** ईमेलः **pitara@eklavya.in**

www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

क्या जन्तु भी प्रकाश संश्लेषण कर सकते हैं?

डेबोरा मेक्केंज़ी और माइकल ला पेज

पौधों में प्रकाश संश्लेषण ज़रूरी पोषक तत्व बनाने का एक बहुत ही कारगर तरीका है। भोजन खोजने, खाने और पचाने में समय बर्बाद करने की बजाय, पौधे कार्बन डाइऑक्साइड और पानी को क्लोरोफिल की मौजूदगी में ऑक्सीजन और शर्करा में बदलने के लिए सूरज की रोशनी का उपयोग करते हैं।

कुछ जीव प्रकाश संश्लेषण की शक्ति का दोहन करने में कामयाब रहे हैं। उदाहरण के लिए, जब सैकोग्लोसन समुद्री स्लग प्रकाश संश्लेषक हरे शैवाल को खाते हैं, तो शैवाल से क्लोरोप्लास्ट स्लग की आँत की कोशिकाओं में शामिल हो जाते हैं, जहाँ वे बाकी शैवाल के पचकर बाहर निकल जाने के बाद भी पोषक तत्वों को पम्प करना जारी रखते हैं।

कुछ क्लैम और फ्लैटवर्म जैसे जीव भी शैवाल की प्रकाश संश्लेषक शक्तियों का उपयोग करते हैं, लेकिन एक सहजीवी दृष्टिकोण अपनाते हैं, जहाँ शैवाल को कोई नुकसान नहीं पहुँचता। कोरल इसका एक उत्तम उदाहरण हैं। अधिकांश रीफ-बिल्डिंग कोरल में शैवाल की कॉलोनियाँ होती हैं। दिन के दौरान, शैवाल कोरल की अधिकांश ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करते हैं और बदले में, शैवाल को भी एक सुरक्षित स्थान मिलता है।

सूरज की रोशनी का उपयोग करने वाला एकमात्र कशेरुकी जीव स्पॉटिड सेलामेंडर है। यहाँ, पानी में रहने वाले शैवाल सेलामेंडर के अण्डों को अपनी रिहाइश बनाते हैं, फिर भ्रूण कोशिकाओं में शामिल हो जाते हैं जहाँ वे विकासशील जीव की मदद करते हैं।

इन सबसे यह सवाल उठता है कि क्या हम इन्सान भी कभी प्रकाश संश्लेषण कर सकते हैं? सुनने में यह विचार अच्छा है लेकिन है तो दूर की कौड़ी ही। ऐसा क्यों है, जानते हैं इस लेख में।

वो असाधारण प्रयोग

"बहुत दूर की कौड़ी थी," क्रिस्टिना एगेपेकिस को लगता है, "हम तो यही सोच रहे थे कि पता नहीं क्या होगा।" उन्होंने एक असाधारण प्रयोग किया था: ज़ेब्रा मछली के अण्डों में प्रकाश संश्लेषी बैक्टीरिया इंजेक्ट किए गए थे।

बोस्टन में हार्वड मेडिकल स्कूल की शोध छात्र एगेपेकिस मात्र यह देखना चाहती थीं कि क्या यह बैक्टीरिया जीवित रह पाएगा। बड़ी कोशिकाओं में प्रवेश करने वाले बैक्टीरिया या तो खुद मर जाते हैं या मार दिए जाते हैं। मगर कभी-कभार कुछ अलग भी हो जाता है, जिसके परिणाम धरती का हुलिया बदल सकते हैं। वैसे तो प्रकाश को भोजन में तबदील करने की क्षमता सायनोबैक्टीरिया में विकसित हुई थी और वनस्पति का विकास तब हुआ जब ज़्यादा उन्नत कोशिकाओं ने इन सायनोबैक्टीरिया को अपने अन्दर गुलाम बनाकर यह टेक्नोलॉजी चुरा ली।

जहाँ अधिकांश जीव वैज्ञानिक शर्त लगाकर कहेंगे कि सायनोबैक्टीरिया और मछली का कोई तालमेल नहीं हो सकता, वहीं एगेपेकिस ने जो सायनेकोकस मछली के अण्डों में इंजेक्ट किया था, वह मछली के पैदा होने के दो हफ्ते बाद भी जीवित था। यही वह समय होता है जब ज़ेब्रा मछली के अपने रंजक विकसित हो रहे होते हैं। हो सकता है कि बैक्टीरिया किसी पारदर्शी मछली में ज़्यादा बेहतर ढंग से जीवित रह पाएँगे।

अलबत्ता, सायनोबैक्टीरिया की वृद्धि व विभाजन सामान्य नहीं रहे। एगेपेकिस ने बताया कि इन बैक्टीरिया ने मछली को ज़्यादा शर्करा भी उपलब्ध नहीं कराई। अर्थात् मछली के भ्रूणों को प्रकाश से शायद ही कोई ऊर्जा प्राप्त हुई हो। और यही हाल तब भी रहे जब सायनोबैक्टीरिया को जेनेटिक स्तर पर इस ढंग से परिवर्तित किया गया था कि वह शर्करा को अपनी कोशिका से बाहर स्थानान्तरित करे। मगर इस बात से कई आशावादी सवाल जन्म लेते हैं कि मछली और बैक्टीरिया जीवित रहे। क्या एक दिन हम ऐसी मछलियाँ बना पाएँगे जो अपनी कुछ ऊर्जा सीधे धूप से प्राप्त कर सकें?

कुछ जीव भी प्रकाश संश्लेषी

बात हास्यास्पद लग सकती है मगर तथ्य यह है कि कई जन्तु अपने भोजन का कुछ हिस्सा प्रकाश संश्लेषण से प्राप्त करते हैं। इनमें सबसे जाने-माने तो उष्णकटिबन्धीय कोरल्स (मूंगा) हैं मगर कई सारे स्पॉन्ज, एनीमोन्स, सी-स्क्वर्ट, हायड्रा और बाईवॉल्व (सीपियाँ) भी आंशिक रूप से सूर्य की ऊर्जा पर निर्भर हैं। दरअसल, सूर्य से ऊर्जा प्राप्त करने

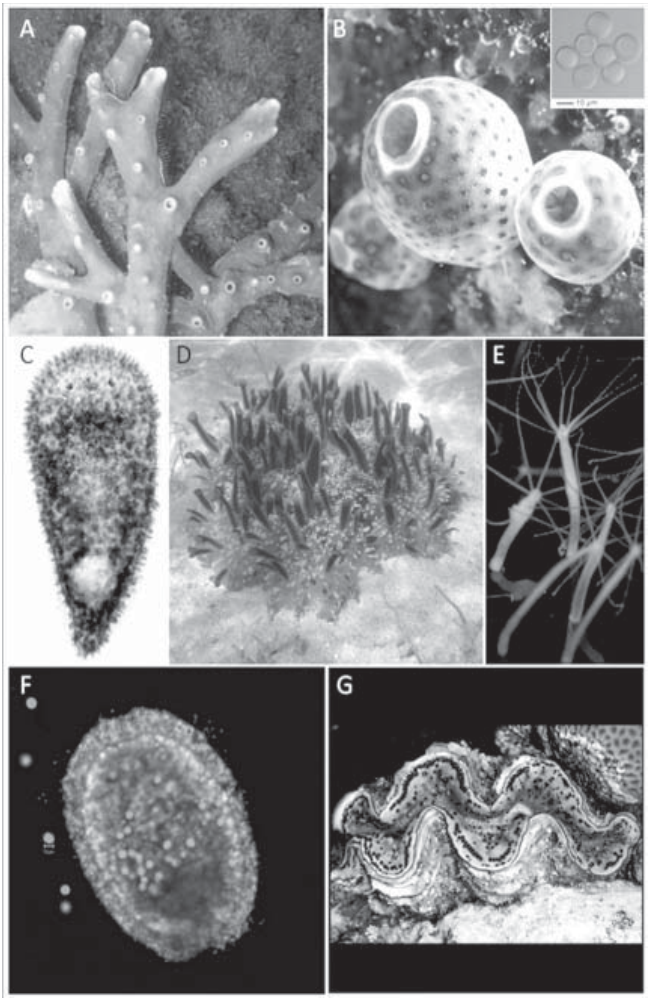

चित्र-1: *विविध सहजीवियों वाले विभिन्न प्रकाश संश्लेषक जानवरों के उदाहरण। (A) सायनेकोकस के साथ निओपेट्रोसिया सबट्राइंगुलरिस (फोटो - रॉबर्ट थैकर); (B) प्रोक्लोरोन के साथ डिडेमनम मोले (इनसेट) (फोटो - यूइची हिरोसे); (C) टेट्रासेल्मिस सहजीवियों के साथ सिम्सगिटिफेरा प्रजाति (D) सिम्बियोडिनियम के साथ कैसिओपिया ज़ामाचाना (फोटो - एलन वर्डे); (E) क्लोरेला के साथ हरा हाइड्रा (फोटो - थॉमस बॉश); (F) लाल ऑटोफ्लोरोसेंट सिम्बियोडिनियम के साथ फंगिया कोरल लार्वा (नीला) की कॉन्फोकल छवि (फोटो - वर्जीनिया वीस); और (G) सिम्बियोडिनियम के साथ ट्रिडैकना प्रजाति (वुड्स होल ओशनोग्राफिक इंस्टीट्यूशन की अनुमति से जेसुस पिनेडा द्वारा फोटो)।*

वाले जन्तु इन्सानों के भोजन का स्रोत भी हैं; विशाल क्लैम्स पिछले एक लाख वर्षों से मनुष्य के भोजन का हिस्सा रहे हैं।

यदि आप यह सोच रहे हैं कि ये सारे जन्तु पौधों के जैसे दिखते हैं या उनकी तरह व्यवहार करते हैं, तो ऐसा हर मामले में नहीं होता। कई प्रकाश संश्लेषी जन्तु स्वतंत्र रूप से विचरण करने वाले भी हैं। प्रकाश संश्लेषी चपटे कृमि करीब 1.5 से.मी. लम्बे होते हैं और कई स्थानों पर पाए जाते हैं। इसी प्रकार से वेलेला नामक जेली मछली है जो समुद्र की सतह पर उतरती रहती है। इनके अलावा अपसाइड डाउन जेली मछली भी है। इन सबमें सबसे हैरतअंगेज़ जन्तु विभिन्न किस्म के समुद्री स्लग हैं जो सूर्य से ऊर्जा प्राप्त करते हैं। अलबत्ता, इनमें किसी रीढधारी जन्तु का नाम नहीं है। मगर सम्भव है कि बदलाव आने को ही हो। यह काफी समय से पता रहा है कि कुछ उभयचर जीवों के अण्डों के आसपास के लसलसे पदार्थ में शैवाल उगती है। इसमें दोनों को फायदा होता है - शैवाल ऑक्सीजन उपलब्ध कराती है और भ्रूण के उत्सर्जी पदार्थों से पोषण प्राप्त करती है।

धब्बेदार सेलामेंडर

अब पता चला है कि धब्बेदार सेलामेंडर *(एम्बीस्टोमा मेक्युलेटम)* एक कदम और आगे जाता है। कनाडा स्थित डलहौज़ी विश्वविद्यालय के रयान कर्नी ने पाया कि इस सेलामेंडर की मादा शैवाल की कोशिकाओं को अपनी अण्डवाहिनी में संग्रहित करके रखती है और किसी तरह से उन्हें अपने अण्डों में पहुँचा देती है। और तो और, ये शैवाल सिर्फ अण्डों के आसपास विकसित नहीं होते बल्कि सेलामेंडर भ्रूण की कोशिकाओं के अन्दर भी पनपते हैं। सेलामेंडर की कोशिकाओं के अन्दर ऊर्जा का उपभोग करने वाले माइटोकॉण्ड्रिया इन शैवाल कोशिकाओं के इर्द-गिर्द इकट्ठे हो जाते हैं - शर्करा व ऑक्सीजन पाने के लिए।

हम अभी यह नहीं जानते कि सेलामेंडर के भ्रूण को शैवाल से भोजन प्राप्त होता है या नहीं और फिलहाल तो यह सम्भव नहीं लगता कि वयस्क में ऐसा होता होगा क्योंकि वयस्क सेलामेंडर अपना अधिकांश दिन का समय काई या पत्थरों के नीचे अन्धकार में गुज़ारते हैं। वैसे भी सेलामेंडर की काली त्वचा में से प्रकाश का अन्दर पहुँचना मुश्किल ही है। बरहाल, ऐसा लगता है कि कम-से-कम एक रीढ़धारी जीव है जो अपने जीवन-चक्र के एक हिस्से में प्रकाश संश्लेषी होता है।

अर्थात् सवाल यह नहीं है कि क्या जन्तु प्रकाश संश्लेषण कर सकते हैं। सवाल तो यह है कि क्यों इतने थोड़े-से जन्तु ऐसा करते हैं। कुछ शोधकर्ताओं का मानना है कि प्रकाश

संश्लेषण का नकारात्मक पक्ष आम तौर पर उसके फायदों पर भारी रहता है। कुछ अन्य जीव-वैज्ञानिक इस बात से असहमत हैं। वैन्कूवर, कनाडा में ब्रिटिश कोलंबिया विश्वविद्यालय के पैट्रिक कीलिंग का मत है कि "बात यह नहीं है कि जन्तु प्रकाश संश्लेषण कर नहीं सकते, बल्कि यह है कि उन्होंने किया नहीं है।" कीलिंग क्लोरोप्लास्ट के विकास

चित्र-2: *पीला स्पॉटिड सेलामेंडर, समुद्री स्लग की तरह ही, शैवाल के साथ सहजीवी सम्बन्ध में रहता है। शैवाल जीव के भ्रूण में पाया गया। सेलामेंडर के भ्रूण स्पष्ट रंग के अण्डों में पाए जाते हैं, जो मादाओं द्वारा पानी में निचले पौधों पर सतह के करीब दिए जाते हैं, ताकि प्रकाश उन तक पहुँच सके।*

ऐसा लगता है कि ऊर्जा का एक अतिरिक्त स्रोत प्रदान करते हुए हरा शैवाल भ्रूण को सूर्य के प्रकाश से वृद्धि और विकास के लिए बहुत आवश्यक ऊर्जा प्राप्त करने में मदद करता है (यह बदले में, शैवाल के जीवित रहने की सम्भावनाओं को बढ़ाता है)। स्पॉटिड सेलामेंडर सबसे अधिक विकसित पशु प्रजाति में से एक है और सभी रीढ़धारी जीवों में से एकमात्र है, जो सीधे प्रकाश संश्लेषण से लाभ उठा सकता है। आम तौर पर, अत्यधिक विकसित जीवों की प्रतिरक्षा प्रणाली इस तरह के सहजीवी व्यवहार को रोकती है। (क्रेडिट: विकिपीडिया कॉमन्स)

का अध्ययन करते हैं। यह समझने के लिए कि इन दो मतों में से कौन-सा सही है, हमें यह देखना होगा कि प्रकाश संश्लेषण के लिए लगता क्या-क्या है।

प्रकाश संश्लेषण के लिए ज़रूरी शर्तें

पहली ज़रूरत है, प्रकाश। यह महज़ संयोग नहीं है कि जिन जन्तुओं में प्रकाश संश्लेषण का विकास हुआ है, उनकी जीवन शैली में रोशनी में रहना पहले से शामिल था। और इनमें से कई जन्तु, जैसे हायड्रा और जेलीफिश के शरीर अर्धपारदर्शी होते हैं जिसमें से प्रकाश अन्दर जा सकता है।

शरीर की आकृति से भी फर्क पड़ता है। एनीमोन्स और कोरल्स जैसे कई सारे प्रकाश संश्लेषी जन्तुओं की रचना शाखीय होती है, लगभग वैसी ही जैसी पौधों की होती है। अन्य प्रकाश संश्लेषी जन्तु जैसे चपटे कृमि और कुछ सेकीग्लॉसन (समुद्री स्लग) का आकार चपटा पत्तीनुमा होता है। इससे इन जन्तुओं की सतह का क्षेत्रफल उसी आयतन के अन्य आकार से अधिक हो जाता है और उन्हें अधिकतम प्रकाश सोखने में मदद मिलती है।

प्रकाश की ज़रूरत से इस बात की व्याख्या हो जाती है कि क्यों अधिकांश जन्तु प्रकाश संश्लेषण नहीं करते। यह हो सकता है कि वयस्क धब्बेदार सेलामेंडर को कुछ ऊर्जा प्रकाश संश्लेषण से मिल जाती हो, मगर दिन के उजाले में खुद को खुले में रखने के खतरे कहीं ज़्यादा हैं। इस खतरे का मतलब है कि इस क्षमता का आगे विकास नहीं होगा। दूसरी ओर, कई स्तनधारियों, पक्षियों और सरिसृपों को पर्याप्त धूप मिलती है मगर उनका बालों का आवरण, पंख और शल्क, इस रोशनी को उनकी कोशिकाओं तक नहीं पहुँचने देते।

मगर यहाँ यह भी लगता है कि थोड़े-से प्रकाश से भी काम चल सकता है। न्यूडीब्रांच समुद्री स्लग *(प्लेकोब्रेंकस ऑसिलेटस)* को अवश्य ही प्रकाश संश्लेषण से फायदा मिलता होगा, हालाँकि यह अपना दिन आधा रेत में धँसे-धँसे गुज़ारता है और इसकी प्रकाश संश्लेषी कोशिकाएँ त्वचा की परतों से ढँकी होती हैं। और यह भी सही नहीं है कि इस समस्या का एकमात्र समाधान चपटा या शाखित शरीर ही है। कुछ स्पॉन्ज के सिलिका कंकाल फायबर ऑप्टिक केबल की तरह काम करते हैं, और प्रकाश को शरीर के अन्दर तक पहुँचा देते हैं।

वास्तव में, शायद सबसे असम्भव लगने वाले प्रकाश संश्लेषी जन्तु तो विशाल क्लैम्स हैं। इनकी खोल काफी मोटी होती है और सतह का क्षेत्रफल अपेक्षाकृत कम ही होता है। इसके बावजूद एक युवा क्लैम 10 माह तक मात्र प्रकाश के बल पर वृद्धि करता रह सकता है। बर्मुडा इंस्टीट्यूट ऑफ

ओशिन साइन्सेज़ की एंजेला डगलस कहती हैं कि इसे सम्भव बनाने के लिए विशाल क्लैम्स ने अपनी अन्दरूनी व्यवस्था में भारी फेरबदल किए हैं। अलबत्ता, यदि शुरू से ही क्लैम्स को प्रकाश संश्लेषण से फायदा न मिला होता, तो ये व्यापक अनुकूलन विकसित न हुए होते।

दरअसल, प्रकाश संश्लेषी शैवाल कुछ सीपियों, शंखों और घोंघों के शरीर के अन्दर भी पाए गए हैं। सम्भवत: ये इनके शरीर की कठोर खोल में से होकर पहुँचने वाले थोड़े-से प्रकाश पर भी जी पाते हैं। ऐसा माना जाता है कि मेज़बान को भी इन शैवालों से थोड़ा भोजन मिल जाता

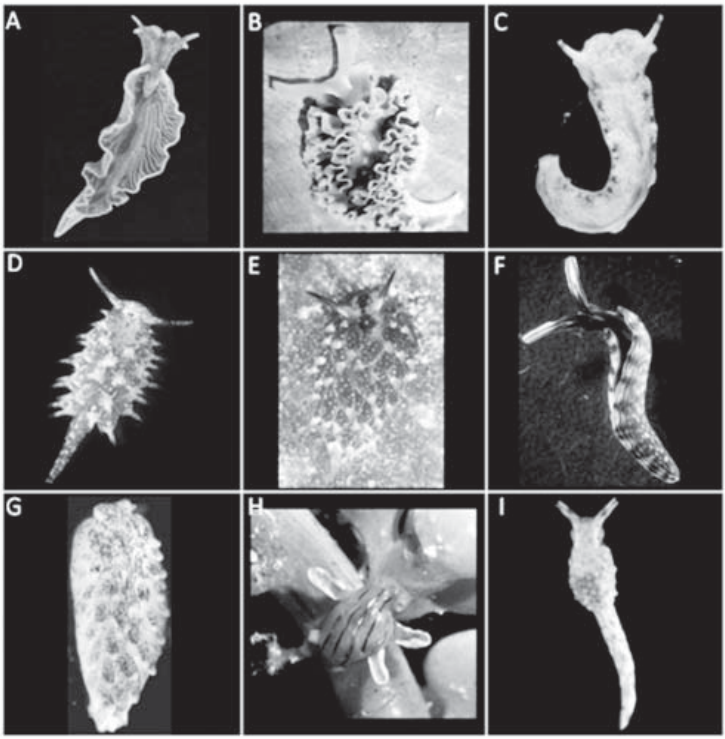

चित्र-3: *क्लोरोप्लास्ट प्रतिधारण के विभिन्न समयों के साथ प्रकाश संश्लेषक सेकोग्लॉसन (समुद्री स्लग और समुद्री घोंघे का एक सुपरऑर्डर) के उदाहरण। (A) एलीसिया क्लोरोटिका, (B) एलीसिया क्रिस्पैटा, (C) प्लेकोब्रांचस ओसेलेटस, (D) कोस्टासिएला ओसेलिफेरा, (E) थुरिडिला ग्रेसिलिस, (F) कोस्टासिएला कुरीशिमा, (G) एल्डेरिया मोडेस्टा, (H) लोबिगर विरिडिस (I) ऑक्सिनो एंटिलेरम।*

है। हालाँकि, इसे अभी तक साबित नहीं किया गया है।

यदि क्लैम्स और शंखों को प्रकाश संश्लेषण के लिए पर्याप्त प्रकाश मिल सकता है, तो मछलियों को तो कोई दिक्कत ही नहीं होनी चाहिए। वास्तव में, कुछ मछलियों, जैसे लायनफिश और पत्तीनुमा समुद्री ड्रेगन या रेफिश या चपटी मछलियों, का आकार तो प्रकाश हासिल करने के लिए एकदम सही है।

प्रकाश संश्लेषण के लिए दूसरी ज़रूरत है उस मशीनरी की जो प्रकाश को भोजन में बदल सके। पौधों में यह क्लोरोप्लास्ट के रूप में होती है। क्लोरोप्लास्ट वास्तव में सायनोबैक्टीरिया के निर्वस्त्र रूप हैं जिन्हें करीब ढाई अरब वर्ष पूर्व पौधों ने अपनी कोशिका में समाविष्ट कर लिया था। जन्तुओं के पूर्वजों के पास क्लोरोप्लास्ट कभी नहीं रहा मगर एक किस्म के जन्तु ज़रूर क्लोरोप्लास्ट हासिल कर सकते हैं।

क्लोरोप्लास्ट पाने के तरीके

सूर्य से ऊर्जा प्राप्त करने वाले सेकोग्लॉसन समुद्री स्लग जिन शैवालों का भक्षण करते हैं, उनके क्लोरोप्लास्ट अलग कर लेते हैं और उन्हें अपनी आँतों की कोशिकाओं में सहेजकर रखते हैं। समुद्री स्लग की आँतों की शाखाएँ पूरे शरीर में फैली होती हैं जिससे प्रकाश अवशोषण के लिए पर्याप्त सतह मिल जाती है।

मगर इसमें एक पेंच है। जब सायनोबैक्टीरिया क्लोरोप्लास्ट में तबदील हुए थे, उनके अधिकांश जीन्स मेज़बान के जीनोम में स्थानान्तरित हो गए थे। इनमें से कुछ जीन्स वे भी थे जो क्लोरोप्लास्ट के कामकाज को सुचारु रूप से चलाने के लिए ज़रूरी थे। चूँकि समुद्री स्लग्स की कोशिकाओं में ये जीन्स नहीं हैं, इसलिए उन्हें हर एकाध सप्ताह में नए क्लोरोप्लास्ट प्राप्त करने होते हैं। इसका एकमात्र अपवाद पन्ना के रंग का हरा स्लग *इलिसिया क्लोरोटिका* है। वयस्क अवस्था में पहुँचकर जब यह एक विशेष शैवाल से क्लोरोप्लास्ट चुराता है, तो फिर इसे अपने जीवन के शेष 10 महीनों तक भोजन करने की ज़रूरत नहीं रहती।

क्या *इलिसिया क्लोरोटिका* ने येन-केन-प्रकारेण क्लोरोप्लास्ट से काम करवाने के लिए ज़रूरी जीन्स हासिल कर लिए हैं? पिछले साल दो टीमों ने इसकी घोषणा की थी। मगर शायद उन्होंने यह घोषणा करने में थोड़ी जल्दबाज़ी की। मैन विश्वविद्यालय की मैरी रम्फो इस बात की पुष्टि करने में असफल रही हैं। उनका मत है कि इसका अन्तिम फैसला जीनोम शृंखला पता करने के बाद ही हो पाएगा।

वे कहती हैं कि क्लोरोप्लास्ट को सँभालने के लिए करीब 200 अतिरिक्त जीन्स की ज़रूरत होती है

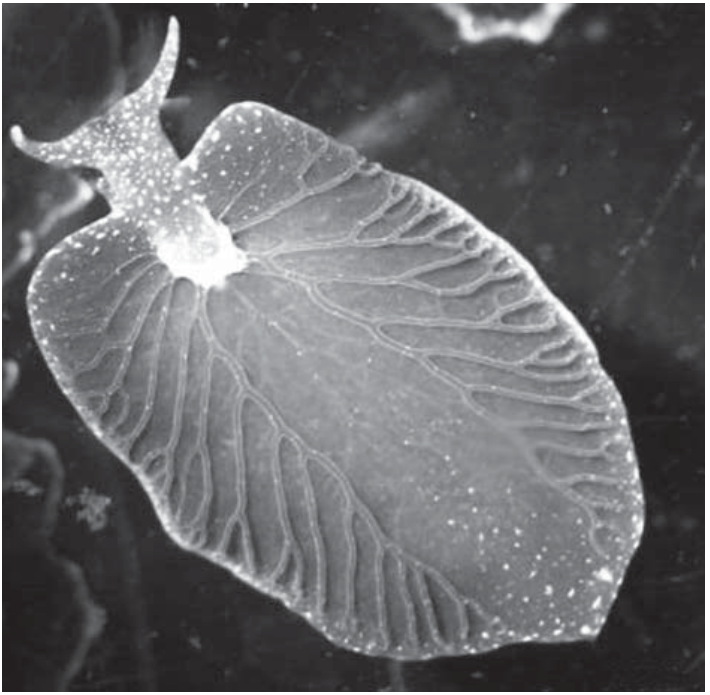

चित्र-4: *समुद्री स्लग (इलिसिया क्लोरोटिका) संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा के पूर्वी तट के पानी में रहने वाला एक असाधारण सुन्दर स्लग है। इसकी विशेषता हरे रंग का, पत्ती के आकार का शरीर है। यह स्लग शैवाल (वाउचेरिया लिटोरिया) खाता है, लेकिन यह इसकी ऊर्जा का एकमात्र स्रोत नहीं है!*

और इन्हें किसी जन्तु के जीनोम में जोड़ना आजकल के किसी जेनेटिक इंजीनियर के लिए अच्छी खासी चुनौती होगी। रम्फो मानती हैं कि "यह सोचना अयथार्थवादी होगा कि आप क्लोरोप्लास्ट गतिविधि को सँभालने के लिए ज़रूरी सारे जीन्स किसी पराए जीनोम में जोड़ सकते हैं और उन्हें अभिव्यक्ति के स्तर तक ला सकते हैं और उनके द्वारा बनाए गए प्रोटीन्स को क्लोरोप्लास्ट तक पहुँचा सकते हैं, इन जीन्स की गतिविधियों के नियमन की बात तो जाने ही दें।"

इससे यह बात समझ में आ जाती है कि जिन जन्तुओं ने पौधों से प्रकाश संश्लेषण की क्षमता चुराई है, उन्होंने आम तौर पर पूरी-की-पूरी कोशिका - केन्द्रक, क्लोरोप्लास्ट वगैरह सब कुछ को ही कैद कर लिया है। किसी

जन्तु कोशिका में मात्र क्लोरोप्लास्ट जोड़ने की बजाय एक पूरी पादप कोशिका जोड़ने के लिए शायद कम जेनेटिक छेड़छाड़ की ज़रूरत हो। इसका सबसे आसान उम्मीदवार है शैवाल सिम्बियोडिनियम, जो कोरल्स, एनीमोन्स, जेली फिश, न्यूडीब्रांच समुद्री स्लग, विशाल क्लैम्स और अन्य जन्तुओं को सौर ऊर्जा उपलब्ध कराता है। दूसरा विकल्प है कि जन्तु कोशिका में सायनोबैक्टीरिया जोड़ दिया जाए - जैसा कि एगेपेकिस ने किया। सायनोबैक्टीरिया के मेज़बान कुछ स्पंज और कोरल आज भी मौजूद हैं।

प्रकाश संश्लेषण, बहुकोशीय जीव और चुनौतियाँ

यदि रीढ़धारी जन्तु अपनी कोशिकाओं में शैवाल या सायनोबैक्टीरिया को बर्दाश्त कर भी लें, तो भी इतने से काम नहीं बनेगा। डगलस बताते हैं, "कोरल पॉलिप किसी तरीके से सिम्बियोडिनियम को तैयार करते हैं कि वह अपने द्वारा निर्मित्त शर्करा को मुक्त कर दे। पॉलिप से बाहर तो सिम्बियोडिनियम अपनी शर्करा अपने पास ही रखता है।"

इस तरह की अभिप्रेरणा ही एकमात्र चुनौती नहीं है। जैसे, एक-कोशिकीय अमीबा पौलीनेला क्रोमेटोफोरा ने एक सायनोबैक्टीरिया को अन्दरूनी सहजीवी के रूप में हासिल कर लिया है और यह सायनोबैक्टीरिया अपने जीन्स खोता जा रहा है और क्लोरोप्लास्ट में तबदील हो रहा है। एक मायने में यह उस प्राचीन घटनाक्रम की पुनरावृत्ति है जिसके परिणामस्वरूप वनस्पतियों का विकास हुआ था मगर किसी भी बहु-कोशिकीय जन्तु ने इस तरह से प्रकाश संश्लेषी सहजीवी को पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित करने में सफलता हासिल नहीं की है। किंग्सटन के रोड आइलैण्ड विश्वविद्यालय की क्रिस लेन, जो आन्तरिक सहजीवियों का अध्ययन करती हैं, कहती हैं कि "एक-कोशिकीय जीव में क्लोरोप्लास्ट को अंगीकार करना और बहु-कोशिकीय जन्तु में ऐसा करना बहुत अलग-अलग बातें हैं। उसे अगली पीढ़ी तक पहुँचाना, और उसके कोशिका विभाजन चक्र को नियंत्रित करना, मामूली बात नहीं है।"

जन्तु अपने प्रकाश संश्लेषी आन्तरिक सहजीवी अगली पीढ़ी को नहीं देते, अण्डे इन्हें नए सिरे से हासिल करते हैं और उसे पूरे शरीर में पहुँचाते हैं। बहुत मुमकिन है कि समुद्री स्लग्स में प्रकाश संश्लेषण का विकास एकाधिक बार हुआ हो। इसका एक कारण तो यह है कि समुद्री स्लग्स में अपने शिकार की दंश कोशिकाएँ और विष को निकालने व उन्हें अपने पूरे शरीर में वितरित करने की क्षमता पहले से थी। मगर यह बहुत ही दुर्लभ क्षमता है।

प्रकाश संश्लेषी जीवन शैली वैसी ही है जैसे आप समुद्र किनारे खुले में खड़े हैं। हो सकता है, आपको बहुत ज़्यादा धूप मिले। रम्फो कहती हैं, "एक मायने में यह अच्छा होगा कि आप एक प्रकाश संश्लेषी जन्तु हों और अभाव के वक्त सूरज की रोशनी से भोजन बना लें। मगर साथ ही आपको सूरज की रोशनी से ऊर्जा सोखने से होने वाले नुकसान झेलने के तरीके भी विकसित करने होंगे।"

ज़मीन पर रहने वालों के लिए जिस तरह से गर्मी एक समस्या है, उसी तरह से नुकसानदेह पराबैंगनी प्रकाश भी एक बड़ी समस्या है। जो जन्तु दिन भर चमकती धूप में खड़े रहेंगे, उनके लिए खुद को ठण्डा रखना एक समस्या होगी। शायद इसीलिए सारे ज्ञात प्रकाश संश्लेषी जन्तु जलचर हैं।

इसके अलावा प्रकाश संश्लेषण की मशीनरी के निर्माण व रख-रखाव की लागत भी ध्यान में रखनी होगी। इसके अतिरिक्त यह भी देखना होगा कि शरीर रचना में ऐसे परिवर्तनों की क्या लागत होगी जिनकी बदौलत प्रकाश संश्लेषण भी सम्भव हो और भक्षण भी। मसलन, प्रकाश संश्लेषी एनीमोन्स के पास प्रायः अपने शिकार को पकड़ने के लिए डंक मारने वाले तन्तु भी होते हैं और धूप को सोखने के लिए शैवाल-भरे तन्तु भी होते हैं। वे अपने शिकारी तन्तुओं का उपयोग सिर्फ रात के समय करते हैं।

इस सबसे क्या पता चलता है? जहाँ जन्तुओं द्वारा प्रकाश संश्लेषण करने में कोई बुनियादी बाधा नहीं है, वहीं अधिकांश जन्तुओं के लिए ज़रूरी मशीनरी हासिल करना बहुत मुश्किल होगा। और तो और, यदि येन-केन-प्रकारेण जन्तुओं ने यह मशीनरी हासिल कर ली, तो भी कई जन्तुओं को इससे लाभान्वित होने के लिए अपनी जीवन शैली व शरीर रचना में व्यापक परिवर्तन करने होंगे। और इस परिवर्तन के दौरान जो मध्यवर्ती अवस्थाएँ होंगी, वे शायद उनके जीवन के अवसरों को कम कर दें। लिहाज़ा, समझ नहीं आता कि इसका विकास कैसे हो सकता है।

जो मुकाम विकास हासिल नहीं कर पाया, उसे शायद जेनेटिक इंजीनियरिंग द्वारा हासिल किया जा सके। मगर क्या रीढ़धारी जन्तुओं के सन्दर्भ में इसके लाभ लागत से ज़्यादा होंगे? गौरतलब है कि रीढ़धारी जन्तुओं की जीवन शैली काफी सक्रियता से भरी होती है। मान लीजिए, हम सिम्बियोडिनियम को किसी मछली की त्वचा की कोशिका में आरोपित कर देते हैं, ठीक उसी तरह जैसे यह कोरल पॉलिप में रहता है। स्क्रिप्स इंस्टीट्यूट ऑफ ओशिनोग्राफी के स्टुअर्ट सन्डिन के मुताबिक कोरल प्रतिदिन प्रकाश संश्लेषण के लिए उपलब्ध प्रति वर्ग मीटर सतह से 3 से 80 ग्राम तक कार्बन का स्थिरीकरण करता है।

ऊर्जा के रूप में देखें तो यह 126 से 3360 किलोजूल के बराबर है। 20 ग्राम की किसी आम मछली की सतह का क्षेत्रफल (पंख सहित) करीब 0.0044 वर्ग मीटर होता है। यदि मछली का वज़न 500 ग्राम हो, तो सतह का क्षेत्रफल 0.045 वर्ग मीटर होगा। मछली पोषणविद् इन्ग्रिड ल्यूपेश के मुताबिक 20 ग्राम की एक कॉर्प मछली को अपना वज़न स्थिर रखने के लिए प्रतिदिन 3 किलोजूल ऊर्जा की ज़रूरत होती है। तो 500 ग्राम की खाने योग्य मछली को 40 किलोजूल चाहिए ।

थोड़ा हिसाब लगाया जाए तो पता चल जाएगा कि प्रकाश संश्लेषण से कॉर्प मछली को उसकी ज़रूरत से कई गुना ज़्यादा ऊर्जा मिल सकती है। तो लगता है कि प्रकाश संश्लेषी मछली एक ज़बर्दस्त चीज़ होगी। इसी प्रकार की गणना से पता चलेगा कि स्तनधारियों को भी काफी फायदा हो सकता है। मगर इसमें कई अगर-मगर हैं।

जेनेटिक इंजीनियरिंग से मदद

एक तो यह जानना ज़रूरी है कि जेनेटिक इंजीनियरिंग से तैयार मछलियाँ शायद लाखों वर्षों के विकास में तराशे गए कोरल्स जैसी कार्यक्षम न हों। मसलन, प्रकाश से अपना सम्पर्क बढ़ाने के लिए मछलियों को अलग ढंग से व्यवहार करना होगा। उनकी त्वचा और शल्क पारदर्शी होने चाहिए ताकि कोशिकाओं तक प्रकाश पहुँच सके मगर साथ ही, पराबैंगनी प्रकाश से सुरक्षा की व्यवस्था भी होनी चाहिए। सम्भव है, प्रकाश संश्लेषी कोरल के समान प्रकाश संश्लेषी मछलियाँ भी गर्म जगहों पर ही पनपेंगी, जहाँ खूब धूप हो, साफ पानी हो और तापमान में उतार-चढ़ाव कम हो। इसके अलावा, अधिकांश प्रकाश संश्लेषी जन्तुओं को अपने आन्तरिक सहजीवियों से कार्बोहाइड्रेट की खुराक मिलती है जिसे डगलस फास्ट फूड कहते हैं। प्रोटीन्स, विटामिन्स, खनिज लवण वगैरह तो भोजन से ही मिलते हैं। बहुत अधिक शक्कर मछलियों के लिए खराब हो सकती है और खास तौर से मछली पालन के सन्दर्भ में कार्बोहाइड्रेट उपलब्ध कराना तो काफी सस्ता पड़ता है। उनकी खुराक का महँगा हिस्सा तो प्रोटीन व वसा होते हैं। सिद्धान्त रूप में तो मछलियों को नाइट्रोजन स्थिर करने वाले सायनोबैक्टीरिया से लैस करके उनकी प्रोटीन की ज़रूरत भी पूरी की जा सकती है, जैसा कि कुछ स्पॉन्ज व कोरल्स में होता है। मगर यह काम अभी पौधों में ही नहीं किया जा सका है जबकि दशकों से इसके प्रयास ज़ोर-शोर से चल रहे हैं।

वैसे आज भी मत्स्य पालन में कई कॉर्प व टिलेपिया मछलियों को काफी सारा भोजन तो तालाबों में उग रही

वनस्पति से या उन वनस्पतियों का भक्षण करने वाले जन्तुओं से मिल ही जाता है। शैवाल को मछलियों के अन्दर ही समाविष्ट करना शायद इससे बेहतर परिणाम न दे।

तो आश्चर्यजनक उत्तर यह है कि शायद यह सम्भव हो कि आप सौर ऊर्जा चालित मछलियाँ बना लें मगर यदि बात खाद्यान्न उत्पादन की है, तो ये मछलियाँ शायद कोई खास फायदा न दें। यदि इसमें कोई फायदा नहीं है, तो इनके निर्माण में निवेश कौन करेगा, खास तौर से यह देखते हुए कि ऐसा करने के लिए आपको नियामकों और उपभोक्ताओं को विश्वास दिलाना होगा कि ये मछलियाँ सुरक्षित हैं। मगर यदि जेनेटिक टेक्नोलॉजी कुलांचे भरती रही तो अवश्य ही कोई-न-कोई एगेपेकिस के काम को आगे बढ़ाएगा। हो सकता है, एक दिन आपकी पालतू मछली को भोजन खिलाने के लिए आपको बस लाइट ऑन करने की ज़रूरत होगी।

डेबोरा मेक्केंज़ी: तीस से ज़्यादा सालों से *न्यू साइंटिस्ट* पत्रिका के लिए विज्ञान पत्रकार के तौर पर उभरती बीमारियों को कवर कर रही हैं। उन्होंने *अमेरिकन सोसाइटी फॉर माइक्रोबायोलॉजी पब्लिक कम्युनिकेशन अवार्ड* और *एसोसिएशन ऑफ ब्रिटिश साइंस राइटर्स अवार्ड* जीते हैं। पत्रकार बनने से पहले, उन्होंने बायोमेडिकल शोधकर्ता के तौर पर काम किया।

माइकल ला पेज: विज्ञान पत्रकार हैं जो जीवन की शुरुआत और विकास से लेकर जेनेटिक इंजीनियरिंग, CRISPR जीन एडिटिंग, बायोमेडिसिन और पर्यावरण, खासकर ग्लोबल वार्मिंग तक हर चीज़ के बारे में लिखते हैं। उन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में आणविक जीव विज्ञान सहित विभिन्न विज्ञानों का अध्ययन किया। साथ ही, *न्यू साइंटिस्ट* में विभिन्न भूमिकाओं में काम किया है, जिसमें डिप्टी न्यूज़ एडिटर और फीचर एडिटर के रूप में काम करना शामिल है।

मूल लेख *न्यू साइंटिस्ट* पत्रिका, अंक 8 दिसम्बर, 2010 में प्रकाशित।

यह लेख स्रोत फीचर्स, अंक मार्च 2011 से साभार।

सभी चित्र *फ्युचरिज़्म* ई-न्यूज़लेटर और *नेशनल लाइब्रेरी ऑफ मेडिसन* की वेबसाइट से साभार।

आदमी दरअसल एक कीड़ा है!

हरिशंकर परसाई

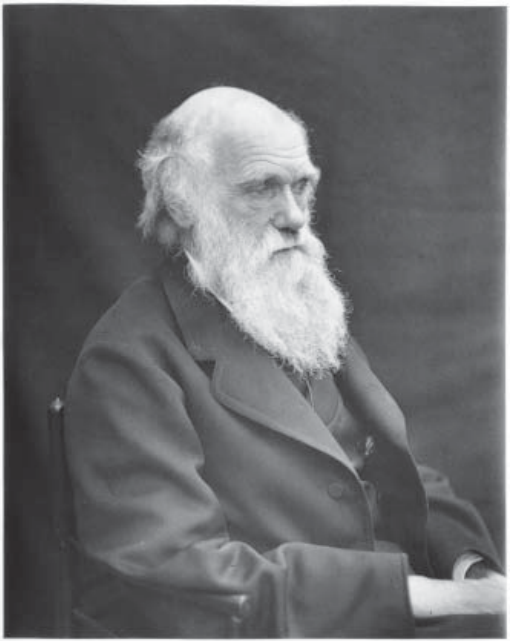

चित्र-1: *1874 के इर्द-गिर्द खींची गई चार्ल्स डार्विन की तस्वीर। यह फोटो उनके बेटे लियोन्हार्ड डार्विन ने खींची थी।*

तिहत्तर वर्ष का एक वृद्ध एक बड़े-से मकान के सामने खड़ा होकर दरवाज़े पर लगी घण्टी बजाता है। थोड़ी देर बाद घर का नौकर बाहर आकर सूचना देता है कि मालिक घर में नहीं हैं। उनके शीघ्र लौटने की कोई आशा नहीं है। पर नौकर बड़े आदमी की आदतें भली-भाँति जानता है। वह शिष्टाचार का महत्व समझता है। फिर वृद्ध बहुत कमज़ोर भी दिख रहा है और लगता है, वह बेहोश होकर गिर पड़ेगा। नौकर वृद्ध से प्रार्थना करता है कि थोड़ी देर आराम कर लीजिए। आगन्तुक नौकर की बात का सम्मान करता है, पर किसी को कष्ट देते हुए उसे दुःख होता है। खुद तकलीफ सहने की उसे आदत है, दूसरों को

क्यों परेशान किया जाए?

आखिर वह वहाँ से चल पड़ता है। अपनी ज़िन्दगी में उसने आराम करना तो सीखा ही नहीं था। सड़क पर आकर उसने टैक्सी की और घर लौट गया।

मानवता के दुर्लभ आदर्शों और मूल्यों को हर कीमत पर मान्यता देने वाला वह वृद्ध – चार्ल्स डार्विन – अपने कॉलेज के दिनों में पादरी बनते-बनते, प्राकृतिक इतिहास में अपने बढ़ते रुझान के कारण वैज्ञानिक बन गया। विज्ञान के क्षेत्र में जितना विरोध डार्विन का हुआ, उस युग में शायद ही उतना विरोध किसी और वैज्ञानिक का हुआ होगा।

प्रेम का पथ

डार्विन का जन्म बारह फरवरी 1809 को हुआ था। 1809 कई कारणों से महत्वपूर्ण रहा था। डार्विन को इस पर गर्व हो सकता है कि उस साल उनके अतिरिक्त लिंकन, ग्लैडस्टोन, पो, टेनिसन, मेंडलसन, गोगोल, ब्रेल इत्यादि महान और प्रसिद्ध वैज्ञानिक, राजनीति के आचार्य, लेखकों, शिक्षाविदों और कवियों ने जन्म लिया था। इन सभी व्यक्तियों ने अपने-अपने क्षेत्र में खूब नाम कमाया और मानवता की सेवा की। डार्विन ने भी अपने उद्योग, कर्मठता और सतत प्रयत्न के कारण अपने क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त की। वैसे डार्विन के पितामह भी एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे।

बचपन में डार्विन सुन्दर लगने वाली चीज़ें और जीव, विशेषरूप से, कीड़े, पत्ते, फूल, तितलियाँ, सिक्के, चिड़ियाँ, घोंघे, चमकदार पत्थर के टुकड़े आदि बड़ी आत्मीयता से इकट्ठा करते थे। हाँ, वे ध्यान रखते थे कि कीड़े-मकोड़े जीवित न हों। वे किसी भी प्राणी की हत्या को पाप मानते थे और उनके मन में सभी छोटे-बड़े प्राणियों के प्रति सहानुभूति और स्नेह था।

यह प्रेम उन्होंने बीगल पर ही पैदा किया था।[1] उस समुद्री यात्रा के दौरान डार्विन ने अनेक घटनाओं को पास से देखा और समझा। अपनी आँखों के सामने उन्होंने नीग्रो[2] औरतों को पाशविक अत्याचारों से बचकर भागने के प्रयत्न में प्राणों से हाथ धोते देखा। गुलाम नीग्रो नौकरों को मालिकों की सज़ा सहते, अत्याचार सहते देखा। इन सभी क्रूर घटनाओं का अक्स-सा डार्विन के मन पर खिंच गया था। यात्रा से लौटकर डार्विन ने एक किताब, *द वॉयेज ऑफ़*

---

[1] *एचएमएस बीगल एक समुद्री जहाज़ था जिसके करीब पाँच साल के सफर (1831–1836) पर डार्विन एक प्रकृति-विज्ञानी के तौर पर शामिल थे। उनका प्रमुख काम था प्रकृति-विज्ञान के सन्दर्भ में विभिन्न जगहों के अवलोकन करना और नमूने इकट्ठे करना।*

[2] *काले लोगों के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला पुराना प्रचलित शब्द, जिसे अपमानजनक होने के नाते अब इस्तेमाल नहीं किया जाता।*

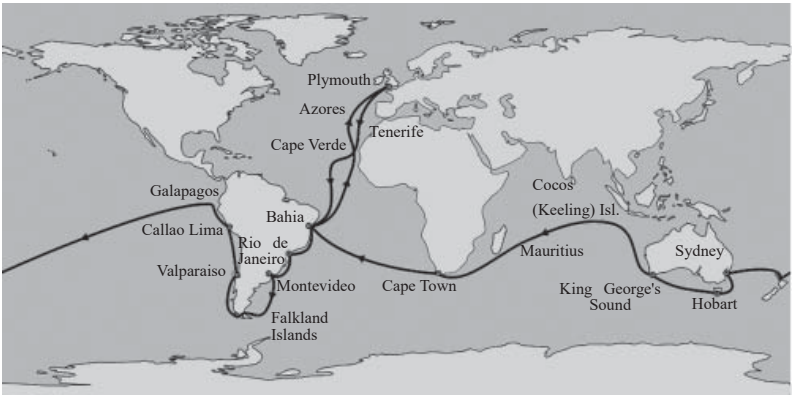

चित्र-2: *बीगल का दूसरा सफर, जिसमें डार्विन भी शामिल थे, दर्शाता नक्शा। 27 दिसम्बर 1831 को इंग्लैंड के प्लाईमाउथ से शुरू हुई यह खोजयात्रा दो साल में खत्म होनी थी, मगर इसकी अवधि बढ़ते-बढ़ते 2 अक्टूबर 1836 को पूरी हुई। इसके कप्तान रॉबर्ट फिट्ज़रॉय थे।*

द बीगल, लिखी जिसमें उन्होंने अपनी यात्रा के संस्मरणों को कवितामयी भाषा में लिपिबद्ध किया। समस्त पीड़ित मानवता के लिए जीवन भर उनके दिल में अपार प्यार और स्नेह भरा रहा। उन्होंने अपने हरेक प्रयास में इस तथ्य का ध्यान रखा कि उस प्रयास से मानव-जाति का सदैव हित हो।

उत्क्रान्ति की प्रतिस्पर्धा

अपनी बीगल यात्रा के अवलोकनों और नमूनों पर लगातार बीस साल तक अथक परिश्रम करने के बाद डार्विन ने *ऑन द ओरिजिन ऑफ स्पीशीज़* (प्रजातिओं की उत्पत्ति पर) नामक किताब लिखी। पुस्तक तैयार हो गई और डार्विन उसे प्रकाशित करने की तैयारी कर रहे थे। यह सन् 1858 की घटना है।

एक दिन सबेरे-सबेरे डार्विन बरामदे में बैठे थे। पोस्टमैन ने उनके हाथ में एक बड़ा-सा पुलिन्दा रख दिया। अचरज से भरकर डार्विन ने जल्दी-जल्दी पैकेट खोला। पैकेट खोलते ही उनकी नज़र एक बड़ी-सी पोथी पर पड़ी। वह पोथी हाथ से लिखे एक निबन्ध की थी। निबन्ध का शीर्षक देखकर डार्विन थोड़ी देर के लिए भौचक्का रह गए। जैसे कुछ अप्रत्याशित-सा घट गया। धीरे-धीरे करके उन्होंने निबन्ध पढ़ डाला, और महसूस किया कि मानो उनके सारे किए-कराए पर पानी फिर गया हो, बीस साल का परिश्रम एक मिनट में चौपट हो गया हो, सारी सम्पदा-सी

लुट गई हो, अँधेरा-सा छा गया उनकी आँखों के सामने। पर उन्होंने खुद को सँभाल लिया।

दरअसल, वह निबन्ध उत्क्रान्ति या 'एवोल्यूशन' पर सर्वथा मौलिक और उत्कृष्ट लेख था जिसे अल्फ्रेड रसल वॉलेस ने लिखा था। उसी विषय पर डार्विन भी कार्यरत थे, और बीस वर्ष के अथक परिश्रम के पश्चात उन्होंने ठीक वही परिणाम ढूँढ निकाला था, जिसे वॉलेस ने खोजा था। यह भी अजीब संयोग था। वॉलेस को क्या पता था कि डार्विन भी उसी विषय पर खोज कर रहे थे।

इस संयोग पर डार्विन ने निर्णय लिया कि उत्क्रान्ति की खोज का सम्पूर्ण श्रेय वॉलेस को दिया जाए। इस प्रकार का विचार डार्विन ने एक पत्र में अपने मित्र के सामने व्यक्त किया था।

अन्त में, जर्नल में लेख छपा जिसमें उन दोनों के निबन्ध एक ही अंक में प्रकाशित हुए और दोनों को उस खोज का स्वतंत्र साझा श्रेय मिला। इस तरह डार्विन और वॉलेस के बीच उम्रभर चलने वाली अन्तरंग मित्रता की शुरुआत भी हुई। और इस लेख के छपने के कुछ ही समय बाद *ऑन द ओरिजिन ऑफ स्पीशीज़* प्रकाशित की गई जो उनके निबन्ध का ही विस्तृत रूप था। इसके पश्चात् भी डार्विन चुप नहीं बैठे। वे और तेज़ी-से अपनी अन्य खोजों में जुट गए।

महानता क्या है?

डार्विन में सादगी और सरलता कूट-कूट कर भरी थी। अपने सहयोगियों, मित्रों और स्नेहियों के प्रति वे बड़े उदार और नम्र रहते थे। पेड़ों, घास, एवं लताओं से डार्विन बच्चों जैसे कुछ इस तरह बातें करते थे कि लगता था अपने सामने खड़े किसी व्यक्ति से किसी विषय पर इन्सान-चर्चा कर रहे हों, या जैसे बच्चों पर स्नेह लुटा रहे हों।

एक दिन ग्लैडस्टोन, ब्रिटेन के प्रधान मंत्री, डार्विन से मुलाकात करने आए। अपने-अपने क्षेत्र में दोनों का कोई सानी नहीं था। बड़ी सरलता से चर्चा होती रही। ग्लैडस्टोन के चले जाने पर डार्विन ने अपने एक मित्र से कहा, "ग्लैडस्टोन इतने महान हैं, पर मुझसे इस ढंग से चर्चा करते रहे, जैसे मैं महान हूँ और वे साधारण हैं। यह उनकी महानता है।"

ग्लैडस्टोन ने भी अपने साथी से ऐसी ही बात कही थी, डार्विन के बारे में। उनके विचार से डार्विन की महानता से कोई इनकार नहीं कर सकता, लेकिन वे भी ग्लैडस्टोन से बच्चों-की-सी सरलता से चर्चा करते रहे। एक महान, दूसरे महान से शायद ऐसी ही बातें करता है।

डार्विन का जीवन विविधताओं और विचित्रताओं से परिपूर्ण था। अपने बच्चों और पत्नी से उन्हें अगाध प्रेम था। उनकी सफलता का श्रेय

बहुत कुछ उनकी पत्नी, एम्मा, को भी जाता है जो सदा उन्हें उत्साहित करती रहीं।

अपनी मृत्यु के तीन माह पहले वे बहुत बीमार हो गए थे। इस दौर में एम्मा ने उनकी बहुत मदद की और उन्हें धीरज बँधाया। वे एम्मा से कहा करते थे, "मुझे मृत्यु का तनिक भय नहीं है – याद करना कि मेरे लिए तुम कितनी अच्छी पत्नी रहीं, और हमारे बच्चों को बताना कि मुझे वे कितने अच्छे लगते हैं। मृत्यु तो आएगी ही। मुझे चिन्ता है, तो केवल इस बात की कि मैं अपना कार्य आगे नहीं बढ़ा पाऊँगा। मैं तो चाहता हूँ वैज्ञानिक अनुसन्धान जारी रखना, काम में लगे रहना।"

डार्विन का क्रम-विकास का सिद्धान्त

डार्विन का क्रम-विकास (या, उद्विकास अथवा उत्क्रान्ति) का सिद्धान्त दुनिया में जीवों के प्रजातीय विकास को समझने का एक वैज्ञानिक तरीका है। इसके मुख्यतः दो पहलू हैं:

1) प्रजातियाँ परिवर्तनों के साथ आगे बढ़ती हैं – डार्विन ने तर्क किया कि प्रजातियाँ स्थिर नहीं होतीं, बल्कि विकासशील होती हैं। वे एक ही पूर्वज से शुरू होकर, धीरे-धीरे, पीढ़ी-दर-पीढ़ी बदल सकती हैं। प्रत्येक जीव अपने जन्मदाता से, महीन रूप से ही सही, अलग होता है। इसका यह अर्थ भी निकलता है कि सभी जीवों के बीच उद्विकास सम्बन्धी एक दूरस्थ रिश्ता है।

2) प्राकृतिक वरण (या, चयन) – यह पहलू तर्क करता है कि भले ही ये भिन्नताएँ बेतरतीब होती हैं, मगर इनमें से कुछ भिन्नताएँ, सापेक्ष रूप से, किसी जीव को उसके परिवेश में जीवित रहने में अधिक मदद करती हैं या फायदा देती हैं। चूँकि इन फायदों से उनके जीवित रहने की सम्भावना बढ़ती है, और फलस्वरूप, उनके प्रजनन करने की सम्भावना भी, इस तरह उनके ये फायदेमन्द व भिन्न गुण अगली पीढ़ी तक पहुँचते हैं, और इस तरह एक प्राकृतिक चयन विधि के ज़रिए, प्रजातियों में विकास होता है।

इसे एक उदाहरण से भी समझा जा सकता है – मान लीजिए, एक बर्फीले इलाके में अलग-अलग रंग के खरगोशों का एक झुण्ड है। उस झुण्ड में, रंग के आधार पर, सफेद रंग के खरगोशों के जीवित रहने की सम्भावनाएँ बाकी खरगोशों से अधिक होगी। क्यों? बर्फ का क्या रंग होता है? और इस तरह उनके प्रजनन करने की सम्भावनाएँ भी अधिक होंगी, जिससे धीरे-धीरे उस इलाके में सफेद रंग के खरगोशों की तादाद ही बहुमत में होगी। यह हुआ प्राकृतिक वरण।

- संकलित

चित्र-3: *'मैन इज़ बट अ वर्म' (आदमी दरअसल एक कीड़ा है)। 1881 में, ब्रिटिश व्यंग्य पत्रिका 'पंच' में, इस शीर्षक के साथ छपा डार्विन और उनके सिद्धान्त पर आधारित कार्टून। इसमें उन्हें एक कीड़े से एक विक्टोरियन जेंटलमैन तक की उत्क्रान्ति के बीच दर्शाया गया है। डार्विन के इस तरह के कार्टून न सिर्फ उनके सिद्धान्तों की आम धारणा व समझ के संकेत देते थे, बल्कि इस तरह उनके सिद्धान्तों की लोगों तक पहुँच और लोकप्रियता बढ़ाने में भी मदद करते थे।*

जीवन का रहस्य

डार्विन की यह कौन-सी खोज थी जिसने सारे संसार के विचारों में क्रान्ति ला दी? जिसने जीवन के प्रति और साथी मानवों के प्रति दृष्टि ही बदल दी?

इस सिद्धान्त के अच्छे-बुरे व्यापक प्रभाव पड़े। डार्विन द्वारा प्रतिपादित

उत्क्रान्ति के सिद्धान्त की बारीकियों को न समझते हुए ऐसा प्रस्तुत किया जाने लगा कि जो बलशाली है, वही जिएगा, निर्बल का जीवन ही व्यर्थ है। इस प्रकार तो शक्ति ही एकमात्र गुण हो जाता है और दूसरों को हराना ही जीवन का ध्येय। डार्विन के सिद्धान्त से जहाँ एक ओर जीव-सृष्टि के विकास के बुनियादी रहस्य को समझने में मदद मिली, वहीं दूसरी ओर, उनके उत्क्रान्ति के सिद्धान्त का गलत अर्थ निकालते हुए दुनिया में बर्बर शक्ति की प्रतिष्ठा भी बढ़ी।

एक सदी गुज़र जाने के बाद भी डार्विन द्वारा प्रस्तुत उत्क्रान्ति के सिद्धान्त पर सोच-विचार, चर्चा और बहस आज भी उतने ही ज़ोर-शोर से जारी है।

हरिशंकर परसाई (1924-1995): हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध व्यंगकार थे। व्यंग रचनाओं के अलावा उपन्यास और लेख भी लिखे। उनका जन्म जमानी, होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) में हुआ था। वे हिन्दी के पहले रचनाकार हैं जिन्होंने व्यंग्य को विधा का दर्जा दिलाया और उसे हल्के-फुल्के मनोरंजन की परम्परागत परिधि से उबारकर समाज के व्यापक प्रश्नों से जोड़ा। साहित्य अकादमी पुरस्कार, शिक्षा सम्मान (मध्य प्रदेश शासन), शरद जोशी सम्मान आदि से सम्मानित।

सभी चित्र इंटरनेट से साभार।

यह विज्ञान गल्प मित्र-बन्धु-कार्यालय, जबलपुर द्वारा सन् 1964 में प्रकाशित हरिशंकर परसाई की किताब *वैज्ञानिक कहानियाँ* से लिया गया है। यह किताब तैलंगाना क्षेत्र की ग्यारहवीं कक्षा के लिए नॉनडिटेल्ड प्रथम भाषा की पाठ्यपुस्तक के रूप में आन्ध्र प्रदेश शिक्षा विभाग द्वारा दी गई स्वीकृति के तहत प्रकाशित की गई थी।

यह लेख मूल लेख का सम्पादित स्वरूप है जिसमें तथ्यात्मक त्रुटियों को ठीक करने के साथ ही पठनीयता बेहतर करने की भी कोशिश की गई है।

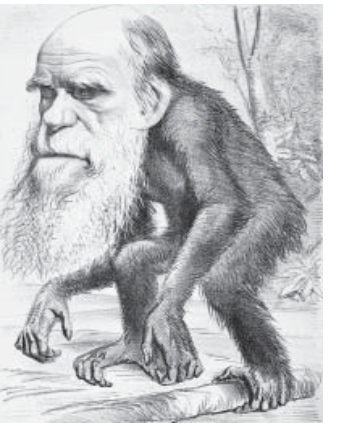

विज्ञान की सामान्य समझ और मानविकी
विश्व-दृष्टि का सवाल

हरजिन्दर सिंह 'लाल्टू'

यह व्याख्यान मार्च 2023 में मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर एवं अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलुरू के द्वारा उदयपुर में आयोजित 'सामाजिक अध्ययन शिक्षण: अहमियत, अन्तर्वस्तु और चुनौतियाँ' संगोष्ठी में दिया गया था।

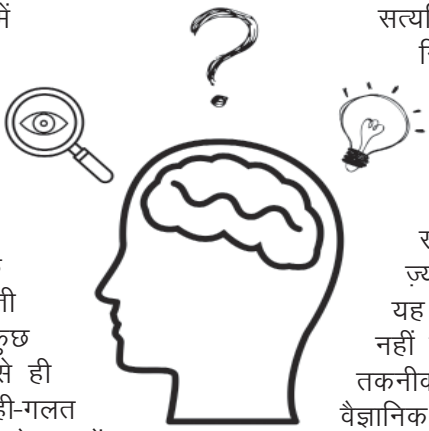

प्रकृति विज्ञान में सोचने की प्रक्रिया जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं का एक समूह है। इस समझ से कई दार्शनिक समस्याएँ पैदा होती हैं। अगर सब कुछ कुदरती नियमों से ही हो रहा हो तो सही-गलत का हिसाब कैसे रखें? मानविकी में यह मानकर चलते हैं कि नैतिकता और मूल्य-बोध के मुताबिक हम अपनी सोच बदलते हैं। 'पथेर पांचाली' फिल्म में गाँव छोड़ते हुए अपु को अपनी गुज़र चुकी बहन दुर्गा का चुराया हार मिल जाता है, वह इसे साथ रखे, अपने माँ-बाप को दे दे या हार के मालिक को लौटा दे - क्या करे? जवाब के लिए आप सत्यजित राय निर्देशित यह मशहूर फिल्म दुबारा देखें।

कौन-सी कलाकृति या साहित्यिक कृति ज़्यादा खूबसूरत है, यह वैज्ञानिक सवाल नहीं है। किस कृति में तकनीकी बेहतरी है, यह वैज्ञानिक सवाल हो सकता है। नोबेल या बूकर न मिलने से हिन्दुस्तानी ज़बान में लिखी किताबें दोयम दर्ज़े की नहीं रह जातीं और न ही ऐसे सम्मान मिली कृतियाँ श्रेष्ठतम हैं।

साइंटिफिक टेंपर

शायद भारतीय संविधान एकमात्र ऐसा संविधान है, जिसमें नागरिकों को साइंटिफिक टेंपर के विकास के

लिए ज़िम्मेदार ठहराया गया है। नागरिकों की बात तो दूर है, यहाँ हुक्काम हर दिन ऐसी बातों को फैलाते हैं, जो ज़ाहिर तौर पर झूठ और कपट है। इसलिए मौजूदा वक्त को विज्ञान का युग नहीं कहा जा सकता। विज्ञान हमें यह साहस देता है कि हम हर मान्यता पर सवाल खड़ा कर सकें। इस मायने में ज्ञान पाने की पद्धति और संचित ज्ञान (एपिस्टीम) के रूप में विज्ञान धर्म जैसी संस्थाओं से बेहतर दिखता है। वैज्ञानिक सोच ही पद्धति नहीं है। अक्सर ऐसा होता है कि कोई अपने काम में सटीक वैज्ञानिक पद्धति का इस्तेमाल कर रहा है, पर वह वैज्ञानिक सोच को नहीं अपना पाया है। भारतीय वैज्ञानिकों में यह आम बात है। इसलिए ऊँची तालीम और भरपूर सुविधाओं के बावजूद भारतीय वैज्ञानिकों का काम अक्सर पश्चिम में हो रहे शोध की नकल मात्र रह गया है। सामाजिक-राजनैतिक विचारों में पिछड़ापन भी इसी वजह से है। अक्सरीयत पर जिस तरह सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और देशभक्ति की संकीर्ण समझ हावी है, उससे यही पता चलता है कि उनमें वैज्ञानिक सोच तो नहीं है। विज्ञान के लिहाज़ से निहायत ही कम पढ़े पंजाबी कवि लाल सिंह दिल की कविताओं में मुझे भरपूर वैज्ञानिक सोच दिखती है:

'माँ-भूमि याद आती है'

प्यार दा वी कोई कारण हुन्दै?
महक दी वी कोई जड़ हुन्दी है?
सच्च दा होवे ना होवे कोई
झूठ कदे बेमकसद नहीं हुन्दा!
तेरे नीले परबताँ करके
ना नीले पाणीआँ लई
जे ये बुड़्ढी माँ दे बालाँ जेहे
गोहड़े-रंग भी हुन्दे
तद वी मैं तैनूँ प्यार करदा
ये दौलताँ दे खज़ाने
मेरे लिए ताँ नहीं
भावें नहीं
प्यार दा कोई कारण नहीं हुन्दा
झूठ कदे बेमकसद नहीं हुन्दा
खज़ानेआँ दे सप्प तेरे गीत गौंदे ने
सोने दी चिड़ी कहँदे हन।

देशभक्ति झूठी महानताओं से जुड़ी हो, यह ज़रूरी नहीं है। हम जहाँ जन्मे-पले, उस ज़मीं से हमें प्यार है - वह जैसी भी है। किसी साहित्यिक कृति या कलाकृति में वैज्ञानिक सोच है या नहीं, इस बात का मतलब है कि रचना में तर्कशीलता है या कि इसके विपरीत रचना की संरचना और इसके कथ्य में भावनात्मकता या आस्था का असर अधिक है। यह साहित्य के रूप का नहीं बल्कि सरोकारों का सवाल है। रूप के नियम होते हैं, जैसे रस-शास्त्र के नियम हैं, इन नियमों का विज्ञान से कोई सम्बन्ध नहीं है। सरोकारों में भी तार्किकता का होना ही विज्ञान की पहचान नहीं है। जहाँ विज्ञान पहली शर्त हो वह कथा, कविता, नाटक आदि विधाओं का साहित्य नहीं होता।

पर साहित्यकारों को अपने समय की वैज्ञानिक जानकारियों का ज्ञान होना लाज़िम है। हर तरह की ज्ञान-मीमांसा किसी जीवन-दृष्टि से जुड़ी होती है। विज्ञान हमें एक जीवन-दृष्टि देता है। प्रत्यक्ष ज्ञान में कितनी अनिश्चितता है, इस बारे में एक निश्चित समझ हमें विज्ञान से मिलती है। साहित्य और कला इस अनिश्चितता को मापे बगैर हमें जीवन, प्रकृति के रहस्यों और समाज की सच्चाइयों से रूबरू करते हैं। वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि में एक खास बात है कि हर सोच आगे नई सोच को जन्म देती है। अच्छे साहित्य में भी यह खासियत है। जो दिखता है, उसके परे जाकर प्रत्यक्ष अवलोकन में निहित कारणों की पड़ताल इस जीवन-दृष्टि का हिस्सा है। अगर यह पड़ताल आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य तक सीमित रहे, तो वह एक अलग दृष्टि होगी; सही या गलत, सवाल यह नहीं है - वह अलग है।

इस बात को समझना ज़रूरी है, वैज्ञानिक दृष्टि हमें भौतिक जगत में हो रही घटनाओं में भौतिक कारणों को ढूँढने को कहती है। यही नहीं, जहाँ तक हो सके, वह हमें प्रत्यक्ष अवलोकनों में कारण-कारक सम्बन्ध ढूँढने को और इस तरह मिले नतीजों को सैद्धान्तिक समझ तक ले चलने को विवश करती है। मूर्त से अमूर्त की यह यात्रा यहीं खत्म नहीं होती है। वैज्ञानिक दृष्टि में अमूर्त सिद्धान्तों का औचित्य तभी है, जब वह परिघटनाओं की कल्पना करने और उनके सचमुच घटित होने की सम्भावनाओं का ऐसा विवरण सामने रखते हैं, जिन्हें हम न केवल गुणात्मक रूप से समझ सकें, बल्कि जिनमें जो कुछ भी माप-तौल लायक हो, उसे माप सकें। साहित्य में इतनी लम्बी भौतिक यात्रा नहीं होती, होना ज़रूरी भी नहीं है। कोई भी रचनाकार सचेत रूप से ऐसी कोशिश नहीं करता है, पर हम चाहें तो इसके होने या न होने को ढूँढ सकते हैं।

वैज्ञानिक सोच हमें अपने और दूसरों की, समाज और परिवेश की बेहतरी के लिए उकसाती है (इसके बावजूद कि विज्ञान या टेक्नोलॉजी से पर्यावरण का विनाश हुआ है, यह बात सच है)। इसी बेचैनी को हम उम्दा अदब में देखते हैं, जैसे मुक्तिबोध की ये पंक्तियाँ:

ओ मेरे आदर्शवादी मन
ओ मेरे सिद्धान्तवादी मन
अब तक क्या किया?
जीवन क्या जिया?

एक और पहलू ऐसे वर्गीकरण का है, जिसमें पहले से उपलब्ध वर्गीकरणों से अधिक स्पष्टता हो। मुक्तिबोध के 'संवेदनात्मक ज्ञान' और 'ज्ञानात्मक संवेदना' जैसे मुहावरों के इस्तेमाल में यही पद्धति दिखती है। वैज्ञानिक सोच में बड़ी बात यह है कि वह प्रतिष्ठित मान्यताओं (paradigm) को तोड़कर नई मान्यताओं को निर्मित करती है। इसलिए जब मुक्तिबोध कहते हैं - 'अब अभिव्यक्ति के सारे

खतरे उठाने ही होंगे। तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब'[1], हम कह सकते हैं कि वैज्ञानिक दृष्टि की सशक्त पहचान सामने आती है। यही पहचान है जो हमें ब्रह्माण्ड की देश-काल की विशालता के सामने निडर होकर खड़े होने की ताकत देती है। यही पहचान हममें यह एहसास लाती है कि मानव होना, प्राणी होना, ब्रह्माण्ड में होना और इस होने को जान पाना कितना सुन्दर है। जहाँ साहित्य में फन्तासी का प्रयोग है, वहाँ ऐसी बेमेल बातें दिखेंगी, जो वैज्ञानिक नहीं हैं, पर वे ज़रूरी हैं। फन्तासी तर्कशीलता से परे हो, ऐसा नहीं है, पर किसी निश्चित और नियमों में बँधी संरचना में सिमटी हो, ऐसा नहीं हो सकता।

विज्ञान और टेक्नोलॉजी

आम तौर पर विज्ञान समझाने के लिए टेक्नोलॉजी में तरक्की की मिसाल सामने रखी जाती हैं, जैसे इंटरनेट, आधुनिक दवाएँ, नाभिकीय बम आदि। तो क्या विज्ञान और टेक्नोलॉजी एक ही बात है? कतई नहीं। हालाँकि, दोनों में गहरा रिश्ता है - एकतरफा नहीं, दो-तरफा। यह समझना ज़रूरी है कि टेक्नोलॉजी में हो रही तरक्की और आम ज़िन्दगी में तरक्की का आपस में कोई रिश्ता नहीं है। नात्सी जर्मनी अपने वक्त टेक्नोलॉजी में दुनिया का सबसे अग्रणी मुल्क था, पर उनकी विचारधारा बर्बर और हिंसक थी। दूसरी ओर, टेक्नोलोजी में कमज़ोर होने के बावजूद कई आदिवासी समुदायों में कला, प्रकृति के साथ सम्बन्ध और सामाजिक रिश्तों में अनोखी ज़हानत पाई जाती है। किसी खास नई टेक्नोलॉजी का उभरना, मौजूदा अलग-अलग टेक्नोलॉजी के बीच स्पर्धा, और उनका कैसा

इस्तेमाल होता है, यह समाज में जड़ बना चुकी ताकतों - जैसे राजनीतिक सत्ता, सामाजिक वर्ग, जेण्डर आदि पर निर्भर करता है। इन्सान सामाजिक प्राणी है। टेक्नोलॉजी में आया बदलाव एक सामाजिक प्रक्रिया ही हो सकता है। नई टेक्नोलॉजी के आने पर पहले

[1] *लेखक के आलेख 'मुक्तिबोध के लेखन में वैज्ञानिक सोच' (सन्तोष चतुर्वेदी सम्पादित 'मुक्तिबोध: विमर्श और पुन:पाठ' - लोकभारती प्रकाशन 2022) से उद्धृत।*

कभी न सोचे गए अच्छे-बुरे नतीजे सामने आते हैं। बुरे नतीजों की आम मिसाल इंटरनेट के प्रसार के साथ फेक न्यूज़ और उसकी वजह से दंगे-फसाद, तानाशाही का बढ़ना है। 1940 के दशक में जब डिजिटल कम्प्यूटर बना, उस ज़माने में इनके इस्तेमाल के बारे में बहुत कम ही जानकारी थी। किसी ने नहीं सोचा था कि कम्प्यूटर जल्दी ही सारी दुनिया पर छा जाएँगे और समकालीन जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा बन जाएँगे। नई टेक्नोलॉजी के आने से समाज के कई पहलू बदल जाते हैं और साथ ही सामाजिक ताकतें नई टेक्नोलॉजी और उनके स्वरूप पर प्रभाव डालती हैं। ये दोनों गतिशील प्रक्रियाएँ हैं, जिसमें एक-दूसरे पर कई कारणों के प्रभाव पर सोचना ज़रूरी है।

समाज से आज़ाद होकर टेक्नोलॉजी ने कभी खुले एजेण्ट की तरह काम नहीं किया है। बदलाव तय करने की काबिलियत समूची जनसंख्या में एक-जैसी नहीं होती। आधुनिक समाज की एक बुनियादी पहेली है कि टेक्नोलॉजी के ज़रिए मानव समाज को बड़ी ताकत मिली है, पर निजी तौर पर हम इस ताकत का बहुत ही कम इस्तेमाल कर सकते हैं। इन्सानी समस्याओं के हल के लिए जो समझ काम कर सकती है, उसके लिए लगातार बदलाव को स्वीकार कर सकना और उम्मीद बनाए रखना ज़रूरी है। जहाँ ज़्यादातर इन्सान भागीदारी न कर सकें और अपने आपको सत्ता से अलग समझते हों, ऐसे समाज में इस तरह की बातें मुमकिन नहीं हैं।

अगर ज़रूरतें पूरी करने के लिए ही टेक्नोलॉजी है, तो सवाल उठता है कि किसके मकसद पूरे करने की बात है? रवीन्द्रनाथ ठाकुर के उपन्यास *घरे-बाइरे* पर सत्यजित राय की बनाई फिल्म का एक दृश्य है, जिसमें मैंचेस्टर की मिलों में बने सस्ते कपड़े बेचते गरीब छोटे व्यापारी स्वदेशी आन्दोलन में हिस्सा नहीं लेना चाहते, क्योंकि उनके खरीदार महँगा खादी का कपड़ा नहीं खरीद सकते। इस वजह से आखिर में दंगे छिड़ जाते हैं, क्योंकि उन दिनों पूर्वी बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन के नेता हिन्दू और गरीब छोटे व्यापारी ज़्यादातर मुसलमान थे।

टेक्नोलॉजी की वजह से समाज में पहले से मौजूद साम्प्रदायिक तनाव बढ़ गए। और करीब के दशकों में नर्मदा नदी पर बने बाँधों की मिसाल है। गुजरात और महाराष्ट्र के धनी किसानों तक पानी पहुँचाने वाला सरदार सरोवर बाँध आदिवासियों के लिए अपने कुदरती रिहाइश के इलाकों से विस्थापन की वजह बन जाता है। यह सोचना कि टेक्नोलॉजी का सामाजिक रिश्तों के साथ कोई लेना-देना नहीं है, गलत है। 2016 में अमेरिकी प्रेसिडेंट के चुनाव में यह मुद्दा काफी चर्चा में

था कि ऑटोमेशन की वजह से नौकरियाँ जा रही हैं। कामगारों को हमेशा ही यह डर रहता है कि टेक्नोलॉजी से आए बदलाव की वजह से वे बेरोज़गार हो सकते हैं। यह डर बेबुनियाद नहीं है। भारत में कामगारों पर कई बड़े संकट आए हैं, जिसकी एक बड़ी मिसाल मानेसर में मारुति-सुज़ुकी फैक्ट्री का है, जहाँ माँगें मनवाने के लिए यूनियन बनाने की लड़ाई यहाँ तक पहुँच गई कि एक मैनेजर की मौत के बाद कत्ल के झूठे इल्ज़ाम में दर्जनों कामगारों को सालों जेल में कैद रहना पड़ा। इतिहास में देखें तो हाथ के करघों की जगह पावर-लूम बने, तो कई बुनकरों को अपना काम छोड़ना पड़ा। जो काम करते रहे, उनको बहुत ही कम पैसे मिलते थे। बनारस के बुनकरों पर अब्दुल बिस्मिल्लाह का उपन्यास *झीनी झीनी बीनी चदरिया* इसी संकट पर आधारित है।

कुछ हद तक यह सही है कि वैज्ञानिक पर यह दबाव नहीं होता कि उसे तय अवधि तक कोई निश्चित जवाब ढूँढने ही हैं, पर टेक्नोलॉजी पर काम कर रहे इंजीनियरों को इतनी आज़ादी नहीं मिलती है। अगर एक पुल बनाना है तो वह बनना है, आप इसे बीच में रोककर कुछ और नहीं कर सकते। विज्ञान और टेक्नोलॉजी, दोनों के लिए गणित में महारत होनी ज़रूरी है, पर सैद्धान्तिक प्रशिक्षण में दोनों में फर्क है। टेक्नोलॉजी में मकसद साफ होते हैं, पर विज्ञान में अनिश्चितता के साथ ही काम करना पड़ता है। टेक्नोलॉजी में आखिरी सवाल सत्य की तलाश नहीं, बल्कि यह होता है कि प्रोजेक्ट काम करेगा या नहीं।

क्या मानविकी इस वजह से अलग है कि इसमें प्रकृति विज्ञान जैसे निश्चित जवाब नहीं होते हैं? ऐसा नहीं है कि विज्ञान में अनिश्चितताएँ नहीं होती हैं, पर किसी मापन में कितनी अनिश्चितता है, यह पता होता है। मानव-विज्ञान में ऐसी गतिविधियों को, जहाँ इन्सान का हस्तक्षेप हुआ है, समझने की कोशिश होती है। अर्थशास्त्र में ऐसा लगता है जैसे वैज्ञानिक पद्धति का इस्तेमाल हो रहा है, पर कहीं-न-कहीं उम्मीद और आस्था जैसी भावनाओं का हस्तक्षेप भारी पड़ता है।

दर्शन और कला कल्पना के ज़रिए अनदिखे को सामने ला देते हैं। आधुनिक दर्शन में आस्था की कोई जगह नहीं है, आस्था की चीर फाड़ ज़रूर है। इस मायने में काफी हद तक दर्शन सामान्य विज्ञान-कर्म से भी ज़्यादा तर्क-आधारित है। पर अपने आप में दार्शनिक अध्ययन वह नहीं है जो विज्ञान या वैज्ञानिक पद्धति है। व्हिटगेनश्टाइन ने कहा है कि दर्शन में बुनियादी समस्या भाषा की है। हमारे ज़हन में बहुत सारी अन-सुलझी बातें ज़बान की जद्दोजहद की वजह से हैं। मानव-शास्त्र या एंथ्रोपोलॉजी

एक वैज्ञानिक विषय है। पर सूफी या बाउल गीतों को हम विज्ञान के उदासीन तरीकों से नहीं समझ सकते, इसके लिए भावनात्मक गहराई चाहिए। समाज-शास्त्र और अर्थशास्त्र जैसे विषयों में तर्क के ढाँचों का भरपूर इस्तेमाल होता है, वहीं साहित्य और कलाओं में अनौपचारिक युक्ति हमेशा काम करती रहती है, जिससे सिद्धान्तों के इस्तेमाल की काबिलियत बढ़ती है, ताकि हम तयशुदा नतीजों से बचें।

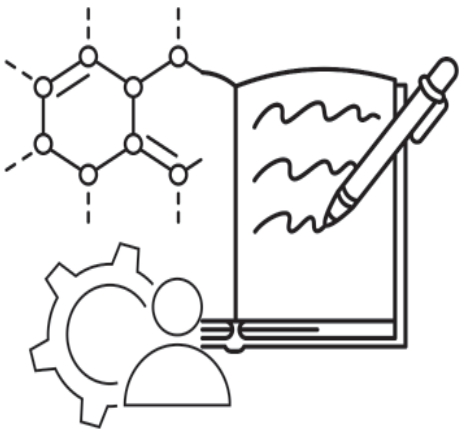

साहित्य और कला

साहित्य और कलाओं की कुछ आम खासियतें हैं। मसलन, बीथोवन का कहना था कि संगीत से मिला ज्ञान किसी और तरह की समझदारी या फलसफे से ज़्यादा ऊँचे स्तर का होता है। गालिब की शायरी देखें तो हम पाएँगे कि अस्तित्व के संकटों पर सबसे पहली गहरी सोच आधुनिक साहित्य में यहीं मिलती है। 'वो खलिश कहाँ से होती' - मनोविज्ञानी किताबें लिखकर समझते रह जाएँगे, जबकि गालिब को पढ़ते हुए हम इसे समझ लेते हैं। सौ साल पहले जाने-माने चितेरे पॉल गॉगुवाँ ने कहा कि कला को दर्शन की ज़रूरत है, इसके ठीक उलट दर्शन को कलाओं की ज़रूरत है। ऐसा न हो तो सौन्दर्य का क्या होगा? संस्कृति की जड़ें बचाए रखने के लिए समाज को चाहिए कि वह कलाकार को अपनी ख्वाहिशों के मुताबिक आगे बढ़ने के सारे मौके दे। जॉन लेनन ने कहा कि "समाज में किसी गायक, कलाकार या कवि की भूमिका इतनी ही है कि हम अपने एहसासों का बयान करें। हम लोगों से यह नहीं कह सकते कि उनके एहसास कैसे हों। हम प्रचारक या नेता नहीं हैं। हम अपने आप को लोगों के सामने खुला रख सकते हैं।" कोई भी अदब या कला की कृति दरअसल एक फलसफे को शब्द-चित्रों या तस्वीरों के ज़रिए पेश करती है। कवि ऑडेन ने कहा था कि इतिहास सवालों का अध्ययन है, जबकि जवाब के लिए हमें मानव-शास्त्र और समाजशास्त्र की तरफ जाना पड़ता है। मैनेजर पांडे ने अपनी किताब *साहित्य का समाजशास्त्र* में इसी बुनियाद को पुख्ता किया है। मनोविज्ञान इन्सानी फितरत को

समझने की कोशिश करता है और इतिहास का गलत पाठ इस कोशिश के उलट काम करता है। इन्सान की निजी ज़िन्दगी और समाज के इतिहास को अलग करके नहीं समझा जा सकता है।

विज्ञान और मानविकी की भाषा

विज्ञान की भाषा में कम-से-कम अस्पष्टता होनी चाहिए, जबकि मानविकी की भाषा में ज़रूरी अनेकार्थी बातें होती हैं। कविता और कला के सन्दर्भ में इसे अक्सर लोकतांत्रिक सम्भावनाएँ कहा जाता है (हर पाठक या नाज़िर अपने ढंग से कृति से जुड़ सके)। मानविकी में प्रस्तावनाओं के मतलब और मकसद मुख्य होते हैं, जबकि प्रकृति विज्ञान में अवलोकन और कार्य-कारण अनुमानों के बिना सिद्धान्त तक पहुँचने की यात्रा शुरू ही नहीं होती। स्टीफन हॉकिंग के मुताबिक हम यहाँ क्यों हैं, कहाँ से आए हैं, ये दर्शन के सवाल हैं, पर अब दार्शनिक अध्ययन या दर्शनशास्त्र खत्म हो गया है। दार्शनिक इसे दूसरे ढंग से कहते हैं कि आज दर्शनशास्त्र जिस तरह तर्क के आधार पर काम करता है, वह विज्ञान से भी अधिक वैज्ञानिक हो चुका है। सर्वांगीण ज्ञान पाने के लिए हमें मानविकी और प्रकृति-विज्ञान को अलग या परस्पर विरोध में रखते हुए नहीं, बल्कि साथ रखकर देखने की ज़रूरत है। सरमाएदारी के निज़ाम ने तालीम का जो हश्र किया है, उस वजह से विज्ञान और इंजीनियरिंग-मेडिकल पढ़ने-पढ़ाने वाले अक्सर इस बात को समझते नहीं हैं। इससे पीढ़ी-दर-पीढ़ी तकनीकी ज्ञान में माहिर ऐसे लोगों की तादाद बढ़ती जा रही है, जिनमें सामाजिक स्तर पर मानवीय

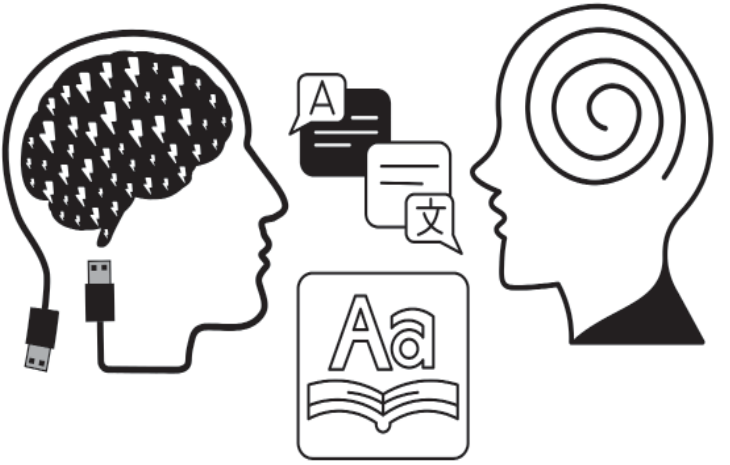

संवेदनाएँ खत्म हो चुकी हैं और इस वजह से फासीवादी विचारधारा पनपती जा रही है। बीसेक साल पहले से पश्चिमी मुल्कों में 'स्टेम' (STEM – साइंस, टेकनोलॉजी, इंजीनियरिंग और मैथ) का जुम्ला चला है, पर दानिशवरों ने इस पर गहरी चिन्ता जताई है कि कला, साहित्य और आम तौर पर मानविकी की पढ़ाई को नज़रअन्दाज़ किया जा रहा है। इनका मानना है कि कल्पनाशीलता और सृजन के लिए ऐसी सर्वांगीण तालीम ज़रूरी है, जिसमें मानविकी का काफी हिस्सा हो। अभी भी ज़्यादातर विज्ञान और इंजीनियरिंग के अध्यापक इस बात को अच्छी तरह नहीं समझते हैं।

धर्म और परम्परा बनाम विज्ञान

धर्म और परम्परा मानव की निर्मिति है और हर इन्सानी हरकत की तरह इनको जानना, समझना मानविकी का कार्यक्षेत्र है। अक्सर आस्थाओं पर सवाल उठाने से बचने की कोशिश दिखती है। इसकी एक मिसाल धार्मिक या राष्ट्रवादी आस्थाओं से जुड़े साहित्य पर आलोचना का अभाव है। इन सीमाओं से मानविकी के विकास में अवरोध आते हैं और कुल मिलाकर सारी इंसानियत को नुकसान पहुँचता है। यह बात भी सही है कि व्यावहारिक स्तर पर विज्ञान में जिन सवालों पर शोध होते हैं, वे भी अक्सर सियासी प्रभावों से तय होते हैं।

कौन-सी ज़बान?

मैंने शुरुआत में ज़िक्र किया था कि समाज पर समझ अपने साथ एक परिवेश और ज़बान को लिए चलती है। मेरी समझ में कोई बड़ी खोज तब तक नहीं होती जब तक विज्ञान की बुनियादी तालीम मादरी ज़बान में नहीं होती। विज्ञान महज़ नई खोजों के बारे में सूचना नहीं है। यह इन्सानी फितरत है जो हमें लगातार कुदरत और कुदरत से हमारे सम्बन्धों के बारे में सोचने को मजबूर करती है। हम जो लिखें, उसमें विज्ञान के इस पहलू को उजागर करने की कोशिश होनी चाहिए।

रिचर्ड फाइनमैन ने छोटे बच्चों को विज्ञान सिखाने की भाषा के मुद्दे पर कहा है कि शब्द सीखना ज़रूरी है, पर पहले हमें विज्ञान सीखना है। चाभी घुमाने पर खिलौना क्यों चलता है, इसके जवाब में 'एनर्जी' शब्द पर प्रतिक्रिया देते हुए वे कहते हैं कि आप तो यह कह दो कि खुदा खिलौना चला रहा है। हिन्दुस्तानी ज़बानों में विज्ञान की शब्दावली को आप मज़ाक कह सकते हैं या एक खौफनाक सपना। 'एनर्जी' अँग्रेज़ी ज़बान का आमफहम लफ्ज़ है। फिर भी उन्हें आपत्ति थी। किसी ज़बान का कत्ल करने का इससे बेहतर कोई तरीका नहीं हो सकता है कि वैज्ञानिक शब्दावली को आम लोगों

की पहुँच लायक न रखा जाए। मेरी सीमित समझ यह है कि विज्ञान पढ़ाते हुए हमें अपनी तमाम ज़िन्दा ज़बानों में मौजूद तकनीकी शब्दावली को वापस ढूँढ लाना साथ-साथ करना होगा।

हिन्दीभाषियों में से विज्ञान में महारत रखने वाले अधिकतर लोग हिन्दी में आदतन नहीं लिखते हैं। चूँकि पेशेवर वैज्ञानिक दिनभर अँग्रेज़ी में काम कर रहे हैं, अपने शोध-परचे आदि अँग्रेज़ी में लिखकर छापते हैं, उनके पास हिन्दी में लिखने का वक्त कम होता है। धीरे-धीरे वे हिन्दी में लिखने की क्षमता खो बैठते हैं। हिन्दी में आम लोगों के लिए ज़्यादातर विज्ञान लेखन उनके द्वारा हो रहा है, जो खुद पेशेवर वैज्ञानिक नहीं हैं। वैज्ञानिकों का लिखा अक्सर अँग्रेज़ी से अनुदित मिलता है। आगे आने वाली पीढ़ियों में पढ़े-लिखे लोगों में भारतीय भाषाओं में विज्ञान पढ़ने-लिखने वाले लोग कम होते जा रहे हैं। अक्सर इन बातों को बदलते वक्त का खेल कह दिया जाता है, पर दरअसल ये राजनैतिक सच्चाइयाँ हैं।

विज्ञान की भाषा कैसी हो, इसे अक्सर राष्ट्रवाद, विकास आदि मुहावरों में ढालकर देखा जाता है। किसका विकास? यह सवाल उठाया जाए तो हमें बुनियादी तौर पर अलग ढंग से इस मुद्दे पर सोचना पड़ेगा। विज्ञान क्या है, किताबों में क्या लिखा होना चाहिए, कैसी भाषा होनी चाहिए, इन सवालों के जवाब हमें पढ़ने या सीखने वाले को ध्यान में रखकर सोचना चाहिए। चूँकि अब तक ऐसा कम ही किया गया है, इसलिए अपनी भाषाओं में विज्ञान पढ़ने-लिखने की रुचि लगातार कम होती रही है। जैसे-जैसे विमर्श की धुरी अँग्रेज़ी की तरफ होती चली है, भारतीय भाषाओं में तकनीकी शब्दों का संकट भी बढ़ता चला है। आम आदमी ही नहीं, बुद्धिजीवियों के लिए भी ये भाषाएँ कठिन होती जा रही हैं और उनके विमर्श में भागीदारी करने वालों का दायरा भी सिमटता जा रहा है।

यह समझना ज़रूरी है कि दूरदराज इलाकों में भी बिजली, पानी से लेकर शिक्षा और मनोरंजन तक, हर पहलू में नई टेक्नोलॉजी हमारे चारों ओर है, हालाँकि विज्ञान या वैज्ञानिक सोच के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता। नई टेक्नोलॉजी में आधुनिक विज्ञान की भाषा है। इसलिए अगर हमारी भाषाओं में विज्ञान लेखन नहीं होगा तो ये भाषाएँ ज़िन्दा नहीं रह पाएँगी। चूँकि विदेशी शब्द अपने इतिहास और संस्कृति में हमसे सीधे तुरन्त नहीं जुड़ते हैं, इसलिए लम्बे समय तक हमारा मानसिक विकास पिछड़ा रहेगा। इसलिए हमारी भाषाओं में विज्ञान लेखन का अनुपात बढ़ना चाहिए। इस वक्त हिन्दी का कोई अखबार विज्ञान पर कोई विशेष पन्ना नहीं निकालता है। सम्पादकों की सोच की

यह सीमा बड़ी समस्या है।

हमने अपनी भाषा और शब्दावली को सचेत रूप से खोया है। आम कामगार लोगों की ज़बान में कारीगरी से जुड़े जो शब्द होते थे, उनका इस्तेमाल न कर कृत्रिम तत्सम शब्द थोपे गए। इससे भारी नुकसान हुआ है। हम अपने ही खिलाफ षड़यंत्र में शामिल होते रहे हैं। आज तकनीकी शब्दों के लिए अँग्रेज़ी शब्दों के इस्तेमाल का कोई विकल्प नहीं बचा है। इस स्थिति को हमें मानना होगा। साथ-साथ हिन्दी के बहुभाषी समाज में जहाँ कारीगरी के जैसे शब्द चल रहे हैं, उनको वापस विज्ञान की शब्दावली में लाने की कोशिश करनी होगी।

कई लोगों में यह गलत समझ है कि संस्कृत का हर शब्द हिन्दी में स्वाभाविक रूप से इस्तेमाल हो सकता है। ऐसी सोच हमारे कई वैज्ञानिकों में भी दिखती है। इसका कारण यह हो सकता है कि उनमें से अधिकतर सामाजिक-राजनैतिक चिन्तन से विमुख हैं और वे ऐसी जातियों से आए हैं, जिनमें संस्कृत का थोड़ा-बहुत प्रचलन रहा है। वे एक तरह की साम्प्रदायिक और कुछ सामान्य पुनरुत्थानवादी सोच से जन्मी मानसिक जड़ता के शिकार हैं। सामान्य छात्रों और अध्यापकों को परेशानी झेलनी पड़ती है और यह बात जगज़ाहिर होते हुए भी विद्वानों को नहीं दिखती है। भारतीय भाषाओं का जितना नुकसान उन पोंगापन्थियों ने किया है जो संस्कृत के कृत्रिम शब्दों को विज्ञान आदि विषयों में डालते रहे हैं, इतना शायद ही किसी ने किया हो। आज हिन्दी प्रदेश में विरला ही कोई वैज्ञानिक होगा जो अपने काम को हिन्दी में समझा सकता है।

जब शब्द अपने संसार के साथ हम तक नहीं पहुँचते, वे न केवल अपना अर्थ खो देते हैं, वे हमारे लिए तनाव का कारण बन जाते हैं। किसी भी शब्द को स्वीकार या खारिज करने का सरल तरीका यह है कि वह हमें कितना स्वाभाविक लगता है, इस पर कुछ हद तक व्यापक सहमति होनी चाहिए। अगर सहमति नहीं बनती तो ऐसा शब्द हटा देना चाहिए। यह सही है कि वैज्ञानिक शब्दावली के लिए सटीक शब्द ढूँढने पड़ेंगे, पर ये शब्द पहले लोक-जीवन से लिए जाएँ और धीरे-धीरे उनमें सफाई की जाए तो समस्या नहीं आती। आज जनसंख्या के उस विशाल वर्ग पर, जो आधुनिक समय की सुविधाओं से वंचित हैं, बौद्धिक विमर्श ऐसी भाषा में होता है जिसका इस्तेमाल उन्हें वंचित स्थिति में रखने के लिए औज़ार की तरह किया गया है। भारतीय भाषाओं में विमर्श सीमित होता जा रहा है। जैसे-जैसे सम्पन्न वर्ग भारतीय भाषाओं से विमुख हो रहा है, आर्थिक कारणों से इन भाषाओं की रीढ़ टूटती जा रही है। इसमें कोई

शक नहीं कि हिन्दुस्तानी ज़बानें मज़लूमों की आवाज़ को भरपूर जगह देने में नाकाम रही हैं। पर इसका हल अपनी ज़बानों में जगह ढूँढने की लड़ाई होनी चाहिए न कि अँग्रेज़ी में। हमें अमेरिका के काले लोगों या मूल निवासियों से सीख लेनी चाहिए कि ज़ालिमों की भाषा सीखकर हम आज़ाद नहीं हो जाते। जो भी थोड़ी-बहुत नस्ली बराबरी उन मुल्कों में आई है, वह संघर्षों से आई है। यूरोपी साहित्य और दर्शन नस्लवादी सोच और भेदभाव से भरा हुआ है। इसलिए यह मान लेना कि अँग्रेज़ी सीखकर भारत के शोषित मनुवाद से आज़ाद हो पाएँगे, सही नहीं लगता है। बेशक आज अँग्रेज़ी ज़बान में मुक्तिकामी साहित्य की भी भरमार है। सदियों की मार से निकलना चाह रहे लोगों को यह लगता है कि अँग्रेज़ी ज़बान में महारत सत्ता और सम्पन्नता की ओर ले जाती है। आज प्राथमिक स्तर पर स्कूल में भर्ती हुए 100 दलित बच्चों में से सिर्फ 18 ही हाई स्कूल तक पहुँचते हैं। असफलता के कई कारणों में भाषा मुख्य है। ज़्यादातर बच्चे अँग्रेज़ी और गणित में ही फेल होते हैं। इसलिए इस बात पर और गहराई से सोचना होगा।

एक तर्क जो सतही तौर पर ज़्यादा वज़नदार दिखता है, वह स्थानीय स्तर पर ताकतवर लोगों की भाषाओं का कम ताकत वाले लोगों पर अपनी भाषा लादने के खिलाफ अँग्रेज़ी को खड़ा करने का है। इसका सबसे ज़्यादा इस्तेमाल हिन्दी और गैर-हिन्दी ज़बानों के बीच के संकट के सन्दर्भ में होता है। गहराई से सोचने पर इस तर्क का बेमानी होना साफ हो जाता है। हिन्दी थोपने के खिलाफ गैर-हिन्दी-भाषियों की लड़ाई वाजिब है पर क्या इसलिए कि उन्हें अँग्रेज़ी चाहिए? जब हम अपनी ज़बान में तालीम की बात करते हैं, इसका मतलब सही अर्थ में अपनी ज़बान होना चाहिए। भोजपुर क्षेत्र के बच्चे को भोजपुरी में, बुन्देलखण्ड के बच्चे को बुन्देली में और कबीलाई इलाके के बच्चे को उसकी अपनी ज़बान में तालीम मिलनी चाहिए। यानी लड़ाई अपनी ज़बान के पक्ष में होनी चाहिए, न कि संस्कृत या अँग्रेज़ी के लिए।

यह दुनिया तरह-तरह के संकटों और विरोधाभासों से भरी है। ऐसे में सोचने वाले लोगों के लिए यह ज़रूरी है कि हम ताकतवर व कमज़ोर को पहचानें और कमज़ोर लोगों के पक्ष में बात रखें। सौ साल बाद समाज-शास्त्री और संचार विज्ञान के शोधार्थी इस पर काम करेंगे कि आज का भारतीय बुद्धिजीवी किस तरह की बनावटी दुनिया में जी रहा है और इसके कारणों में भाषा का सवाल कितना महत्वपूर्ण है। अँग्रेज़ी लचीली भाषा है, अँग्रेज़ी की शब्दावली बड़ी है; स्वाभाविक है कि अँग्रेज़ी के शब्द भारतीय भाषाओं में आ रहे हैं - यह सब तो ठीक है, पर जो खलिश है,

वह यह है कि बकौल गाँधी 'अन्तिम जन' को उसकी अपनी भाषा में बात करता कौन दिखता है। कुल मिलाकर एक अजीब स्थिति है, जिसे कई लोग भारत और इंडिया - दो समान्तर दुनिया का नाम देते हैं।

कई लोग कहेंगे कि यह बाइनरी में फँसी हुई सोच है, पर सचमुच मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह जटिल और साथ ही सामाजिक घटना के रूप में बड़ी सरल-सी बात है। भारतीय सामाजिक-सियासी मंज़र में कई अँग्रेज़ी वाले एक अलग सत्ता अपना लेते हैं। यह इंग्लिशवाला होना अपने साथ देशी भाषा के प्रति उदासीनता ही नहीं, उपेक्षा का स्वभाव लिए होता है। इंग्लिशवाला होना शासक वर्गों के साथ होना है, आम लोगों से अलग होना है। जब तक ज़मीनी ज़बान में सामाजिक विसंगतियों के खिलाफ प्रतिबद्ध सोच रखने वाला कोई है तो ठीक है, जब शासन की मार या अन्य कारणों से ऐसे लोग नहीं हैं तो मैदान संकीर्ण राष्ट्रवाद के लिए खुला है।

भाषाओं का कमज़ोर होना सिर्फ मुहावरों का विलुप्त होना नहीं है, यह सामूहिक और निजी पहचान का घोर संकट पैदा करता है। इस संकट से निपटने के कई तरीके हो सकते हैं - एक तो यह कि हर स्तर पर स्थानीय भाषाओं में काम हो, हर स्तर पर शिक्षा मातृभाषा में हो। इसके विपरीत फासीवाद वह मरीचिका है जो सामयिक रूप से उत्पीड़ित इन्सान को इस ताकत का आभास देती है कि मेरी बोली में ताकत न हो न सही, पर अपनी भी कोई हस्ती है। जब भाषा में बिखराव होता है, जैसा कि आम लोगों पर बोलते हुए अँग्रेज़ी विशेषज्ञों में दिखता है, तो वह सतही रह जाती है और सवालों का हल नहीं दे पाती।[2]

अँधेरे दौर में रोशनी की तलाश

जिस अँधेरे दौर से हम गुज़र रहे हैं, इसमें रहते हुए हम रोशनी की तलाश कैसे करें? मानव दूसरे जानवरों से इसी बात में अलग है कि उसे कुदरती तौर पर ज्ञान-मीमांसा की काबिलियत मिली है। वह सवाल कर सकता है। वह तर्क और भावनात्मकता के साथ भाषा और एहसासों के अर्थ ढूँढ सकता है। इसे बचाए रखना, इस वक्त की सबसे बड़ी लड़ाई है। ज्ञान और सच पर बुनियादी तरीके से सोचना और इस बारे में हर किसी को सचेत करना सबसे बड़ा धर्म है। जो अँधेरा ज्ञान से ही उपजता है, वह अहंकार जो हर ज्ञानी में दिखलाई पड़ता है, उससे हम कैसे बचें? वैचारिक मतभेद की वजह से हम अलग रास्तों पर चल रहे होते हैं, पर गौर करें तो पाएँगे कि अक्सर वैचारिक मतभेद सचमुच

[2] *अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच द्वारा प्रकाशित लेखक की पुस्तिका 'भाषा की लड़ाई' (2018) से उद्धृत।*

इतने गहरे होते नहीं हैं कि वे हमें साथ काम करते रहने से विमुख करें। कबीर कह गए हैं कि 'ढाई आखर प्रेम का...'। इस ढाई आखर को पाने का कोई स्रोत नहीं है, इसे हमें खुद ही अपने अन्दर से प्राप्त करना होता है। जैसा अँधेरा निराला और मुक्तिबोध के जमाने में था, कुछ अर्थों में उससे कहीं ज़्यादा गहरा अँधेरा आज है। आज जहाँ हम खड़े हैं, खुद से पलायन करते हुए अपनी मानवता को भूलते हुए महज़ यंत्र बनकर ही जीना सम्भव है। यह अचानक उछलकर आता अँधेरा नहीं है, यह सदियों से जमा अँधेरे का और घनीभूत होना है। मानो अँधेरे ने इतिहास से सबक लेकर धीरे-धीरे हमारी कोशिकाओं को एक-एक कर ज़ब्त करते हुए हमें पस्त करने की सोची है। इसके बरक्स उजाले की ताकतें छिन्न-विच्छिन्न हैं, बिखराव की पराकाष्ठा है। ऐसे में हर सचेत इन्सान के अन्दर बैठा कोई अज्ञात हृदय की धक्-धक् सुनकर परेशान होता है - मुक्तिबोध की कविता 'अँधेरे में' उसी धक्-धक् को पहचानने को हमें मजबूर करती है। निराला ने 'इलाहाबाद के पथ पर... वह तोड़ती पत्थर' देखा और दिखाया, 'जागो फिर एक बार' में गोविन्द सिंह के सत्, श्री और अकाल का नारा उठाया। आज हम उसे अपने ही घर पत्थर तोड़ते देखते हैं, करोड़ों की

तादाद में सुबह कुहासे में स्त्रियाँ निकल पड़ती हैं, दूर से धब्बों जैसी दिखती हैं। किसान डेढ़ साल तक राजधानी के दरवाज़ों पर डेरा डाले सत्, श्री और अकाल चीखते रहते हैं।

सत् और श्री! वाकई! कहाँ है सत्य? दो सही बटन दबाने पर टेक्नोलॉजी जितना भी सच दिखाती है, हमें उनसे दूर ले जाकर ऐसे बटन दबाने को कहा जा रहा है कि हम झूठ की कलाओं को रप्त कर लें। इन बातों को जानना, जो कुछ हो रहा है उसमें अपनी भूमिका को पहचानना, ये बातें तकलीफदेह हैं।

अन्त में, मैं निराला की कहानी 'देवी' की इन पंक्तियों से बात खत्म करता हूँ - "एक दिन पगली के पास एक रामायणी समाज में कथा हो रही थी। मैंने देखा, बहुत-से भक्त एकत्र थे। इतवार का दिन था। दो बजे से साहित्य-सम्राट गो. तुलसीदासजी की रामायण का पाठ शुरू हुआ, पाँच बजे समाप्त। ...पाठ सुनकर, मँजकर भक्त मण्डली चली। दुबली-पतली ऐश्वर्य-श्री से रहित पगली बच्चे के साथ बैठी हुई मिली। एक ने कहा, 'इसी संसार में स्वर्ग और नरक देख लो।' दूसरे ने कहा, 'कर्म के दण्ड हैं।' तीसरा बोला, 'सकल पदारथ है जग माहीं, कर्महीन नर पावत नाहीं।' सब लोग पगली को देखते, शास्त्रार्थ करते चले गए।"

मानविकी के तमाम विषयों में किस हद तक वैज्ञानिक दृष्टि है, इस पर बहस चलती रहेगी, पर सवाल यह है कि हम कब तक 'पाठ सुनकर, मँजकर' चले जाते रहेंगे?

हरजिन्दर सिंह 'लाल्टू': सेंटर फॉर कम्प्यूटेशनल नेचुरल साइंस एंड बायोइन्फॉर्मेटिक्स, आई.आई.आई.टी., हैदराबाद में प्रोफेसर। प्रिंसटन यूनिवर्सिटी, न्यू यॉर्क, यूएसए से पीएच.डी.। सन् 1987-88 में *एकलव्य* के साथ यूजीसी द्वारा स्पेशल टीचर फैलोशिप पर हरदा में रहे। आप हिन्दी में कविता-कहानियाँ भी लिखते हैं।

सभी चित्र: हिमांशी मोने: स्वतंत्र रूप से चित्रकारी करती हैं। डिज़ाइनिंग में विशेष रुझान। कुछ अद्वितीय तैयार करने के लिए रचनात्मकता और तकनीक का मिश्रण करने के लिए रोमांचित रहती हैं।

हमारा नया प्रकाशन

पढ़ना सीखने और सिखाने का बुनियादी ताना-बाना

मूल्य: ₹190

पढ़ने का अर्थ क्या है? क्या पढ़ने में की गई 'गलतियाँ' भी पढ़ना सीखने में मददगार हो सकती हैं? पढ़ना सीखने में मादरी ज़बान की अहमियत, और सही ढंग से पढ़ना सिखाने के क्या तरीके हो सकते हैं? अगर आपके ज़हन में भी ऐसे सवाल आते हैं तो यह आपके लिए ज़रूरी किताब है। किताब के 18 लेखों में पढ़ना सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में अलग-अलग भूमिकाओं में सक्रिय लोगों ने अपने अनुभवों को साझा करते हुए इसके अलग-अलग आयामों पर रोशनी डाली है।

अपनी प्रति बुक कराने के लिए सम्पर्क करें...

फोनः **+91 755 297 7770-71-72;** ईमेलः **pitara@eklavya.in**

www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

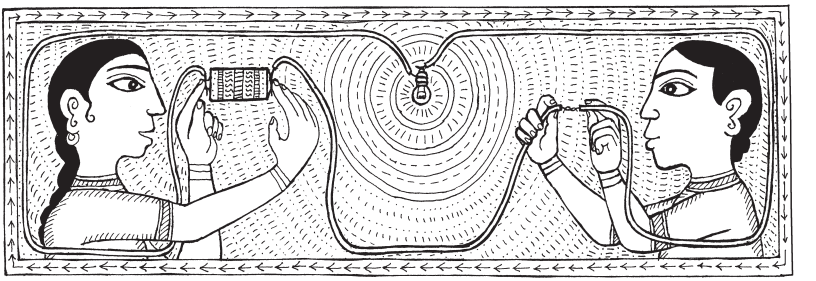

चित्र: कैरन हैडॉक

स्कूल का पहला दिन

(तीन साल पहले)

कालू राम शर्मा

घर की ढलानदार छत पर नालीदार खपरैलों को जमाने के काम में नारंगी और उसकी माँ सुबह से ही लगी हुई थीं। छत पर अपना सन्तुलन बनाकर खड़ी हो नारंगी की माँ ने अपने पल्ले से माथे का पसीना पोंछा और बोलीं, "पाँचवीं पास तो हो गई। मेरा मन तो करता है कि तू आगे भी स्कूल ज़रूर जाए। घर-बार का काम तो होता रहेगा।" यह कहकर नारंगी की माँ छत के खपरैलों को जमाने में फिर से जुट गईं।

रोहिणी की तपन के चलते नारंगी और उसकी माँ पसीने में लथपथ हुए जा रही थीं। नारंगी की नज़रें सीमेंट-कॉंक्रीट की छत पर से होती हुई बादलों पर जाकर टिक गईं। आसमान में सफेद बादलों के पीछे काले-काले बादल बनने लगे थे। झक सफेद बादल ऐसे लग रहे थे मानो नीले आसमान के कैनवास पर कपास के ढेर हों; मानो आसमान पर गलीचे बिछा दिए हों। धूप और छाया लुकाछिपी का खेल खेल रहे थे। एक पल में छाया, एक पल में धूप। ठण्डी हवा का झोंका बदन के पसीने को सुखाता और ठण्डक का एहसास देता। फिर आगे बढ़ता और नुक्कड़ के विशाल पीपल के पेड़ की शाखाओं, कोपलों व पत्तों को हिलाता। पीपल की पत्तियाँ एक-दूसरे से ऐसे टकरातीं मानो तालियाँ बज रही हों। छत पर खड़ी हो नारंगी पत्तियों की हलचल को निहार रही थी। तेज़ झोंके से पुरानी पड़ चुकी पत्तियाँ टूटकर हवा में लहराती

हुई गिरतीं, जिन्हें देखकर नारंगी अचरज में पड़ जाती।

नारंगी ने पत्तों से ध्यान हटाकर आसमान में छाए घने बादलों पर नज़रें जमाईं और अनुमान लगाया, "आज तो पानी आएगा।"

माँ ने कन्धे उचकाए। नारंगी माँ के कन्धे उचकाने के इशारे को समझने की कोशिश कर रही थी। शायद उनके इशारे का अर्थ था – क्या पता! पानी बरस भी सकता है और नहीं भी।

"तेरे मुताबिक अगर बरसने वाला है तो चल, जल्दी से खपरैल फेरकर नीचे उतर जाते हैं।" नारंगी की माँ के हाथ तेज़ी-से खपरैलों पर चलने लगे थे।

पढ़-लिखकर क्या होता है?

शाम होते-होते छत तैयार हो चुकी थी। नारंगी की माँ के दिमाग में कई द्वन्द्व चल रहे थे। उनमें से एक द्वन्द्व नारंगी की पढ़ाई को लेकर चल रहा था, जो थमने का नाम ही नहीं ले रहा था। नारंगी व उसकी माँ छत से उतर चुके थे। नारंगी खेलने चली गई थी। माँ घर के काम में जुट चुकी थीं। काम करते हुए उनके ज़हन में नारंगी की पढ़ाई का विचार घुमड़ रहा था। वे यह सोचकर सिहरी जा रही थीं कि नारंगी के बापू नारंगी को स्कूल में आगे पढ़ने के लिए मना न कर दें। नारंगी के बापू कब के घर आ चुके थे व खटिया पर लेटे हुए थे। नारंगी की माँ तो अपने काम में ही जुटी हुई

चित्र: रंजित बालमुचू

थीं। थोड़े इन्तज़ार के बाद, बापू ने नारंगी की माँ को पानी लाने का इशारा किया। माँ ने बापू को पानी का लोटा थमाया और उनके मूड को पढ़ने की कोशिश करने लगीं।

नारंगी के बापू बाहर से चुप व शान्त दिखाई दे रहे थे, मगर उनके दिमाग में मॉनसून-सी हलचल मची हुई थी।

बापू ने पूछा, "नारंगी नहीं दिख रही। साँझ हो गई फिर भी घर नहीं आई...?"

"यहीं-कहीं गई होगी।" माँ ने कहा। दोनों के बीच फिर से चुप्पी छा गई।

"बरसात की तैयारी है आज रात को!" बापू मॉनसून को लेकर आशान्वित थे, मगर वे छोटे-से खेत में उगाई जाने वाली खरीफ की फसल के भविष्य को लेकर चिन्तित हो चले थे।

"कल से नारंगी का स्कूल खुल जाएगा।" माँ बोलीं।

"अरे, मैं बरसात की बात कर रहा हूँ और तू है कि छोरी के स्कूल जाने

का रोना रो रही है। नारंगी को स्कूल भेजने का अच्छे से सोच लो। गाँव की कोई भी छोरी आज तक आगे नहीं पढ़ी। अपन भी सोच लें।" नारंगी के बापू खाना खाते हुए नारंगी की माँ से बोले।

"पढ़-लिख ले तो अच्छा होगा।" नारंगी की माँ सहमकर बोलीं।

"देख ले..." नारंगी के बापू ने हाथ धोते हुए कहा। "हाँ, ये तो ठीक ही है। ये सोचना होगा कि अकेली छोरी और बाकी सब छोरे! फिर छोरी को पढ़ाने का क्या फायदा..."

माँ बोलीं, "नारंगी कह रही थी..."

"क्या?" बापू ने अपने गीले हाथ धोती के पल्लू से पोंछते हुए पूछा।

"नहीं, कुछ नहीं... उसकी मर्ज़ी स्कूल जाने की है... कम-से-कम आठ क्लास तक पढ़ ले तो अच्छा।" माँ बोलीं।

"चलो, ये भी सही... तू कहती है तो आठ क्लास तक पढ़ ले। पर पढ़कर क्या कर लेगी? इसका जवाब दे। ये ध्यान रखना कि अपने गाँव के पटेल साब की बच्ची को पाँचवीं के बाद स्कूल छुड़वा दिया।" नारंगी के बापू गाँव के लोगों से तुलना कर रहे थे। "हाँ, ये अलग बात है कि ज़रा-सी छुटकी छोरी का ब्याह करना था पटेल साब को।"

"अब ये तो पता नहीं कि पढ़कर कोई बड़ी नौकरी करेगी या नहीं। मेरा मन कहता है कि नारंगी को पढ़ा दें तो कम-से-कम पढ़ना-लिखना तो सीख लेगी। कुछ तो फरक पड़ेगा। मेरे जैसी मजूरी तो नहीं करेगी।" माँ ने कहा।

"ये बात मत कर। तेरे को क्या तकलीफ दी है? मजूरी करना कोई बुरी बात तो नहीं! मन तो मेरा भी है कि पढ़े, पर स्कूलों में पढ़ाई होती कहाँ है ढंग की! अरे, पढ़ाना भी तो नहीं आता। देख ले, अपने गाँव के पढ़े-लिखों का हाल। पढ़-लिखकर ऐसे बिगड़ते हैं कि घर-खेत का काम भी नहीं करते।" नारंगी के बापू अब चुप थे। फिर मन-ही-मन बुदबुदाने लगे, "भण्या पर गुण्या नी। हाँ, एक बात... उसको घर-बार के काम ज़रूर करवाना।"

लग जाओ काम में!

नारंगी बाहर खेलने गई थी। दरअसल, खेल से लौटकर नारंगी ने दरवाज़े की आड़ में खड़ी हो माँ और बापू के वार्तालाप को सुन लिया था।

अगली सुबह माँ ने नारंगी से कहा, "ये कुर्ता धो ले, स्कूल जाना है।"

माँ ने मुड़कर देखा कि नारंगी अपने बालों की लट को उँगलियों में लपेटे हुए है। माँ समझ चुकी थीं कि जब नारंगी कुछ गहरा सोच रही होती है तो बालों की लट अपनी बीच की दो उँगलियों में लपेट लेती है।

आखिर माँ ने टोक ही दिया, "चल, अब लग जा काम में!" नारंगी

उस सोच से बाहर निकली और लग गई काम में।

सुबह-सुबह नारंगी अपना कुर्ता धोकर आँगन में सुखा रही थी। तभी उधर से इसरार बिना स्टैंड की साइकिल चलाते हुए आ रहा था।

नारंगी ने कुर्ता दीवार के सहारे खड़ी रखी खटिया पर सूखने को लटकाया और इसरार से साइकिल लेकर चलाने लगी। साइकिल इतनी ऊँची और भारी थी कि उसके लिए चला पाना मुश्किल हो रहा था। उसने इसरार से कहा, "ले, ज़रा पकड़।" इसरार ने साइकिल को पीछे से पकड़ा और धक्का लगा दिया। नारंगी की साइकिल चल पड़ी। कुछ दूर जाकर वह साइकिल पलटाकर लाई और इसरार को थमाते हुए बोली, "स्कूल में मिलते हैं।"

"अच्छा..." इसरार के चेहरे पर आश्चर्य के भाव थे। इसरार ने साइकिल पलटाई। इस बार, नारंगी ने साइकिल चलाने में इसरार की वैसे ही मदद की जैसे इसरार ने उसकी की थी। इसरार जाते हुए बोला, "अच्छी बात है! मुझे भी इजाज़त मिल गई है स्कूल जाने की। अब्बा ने कहा, स्कूल जाओ। अगर फेल हो गए तो खैर नहीं।"

नारंगी कुछ कहना चाह रही थी, मगर इसरार तो जा चुका था। जल्दी-से तैयार होकर नारंगी स्कूल चल दी।

पढ़ाई शुरू?

भारी तपन के बाद अच्छी बरसात होने से गाँव के किसान खेतों में खरीफ फसल की बोनी शुरू कर चुके हैं। इस वजह से वे अलसुबह खेतों में चले गए हैं। गाँव में बचे हैं तो वृद्ध, दूध पीते बच्चों की माँएँ और बच्चे। कुछ बच्चे गलियों में दिखाई दे रहे हैं। वहीं कुछ अन्य बच्चे घरों के बरामदों में अपने-अपने खेलों में व्यस्त हैं। दूध पीते छोटे बच्चे पालनों में सोए हुए हैं। कहीं-कहीं से छोटे बच्चों के रोने की आवाज़ आ रही है। उन छोटे बच्चों की माँएँ ढोरों पशुओं को बाँधने की जगह को साफ करने में लगी हुई हैं। अन्य महिलाएँ कुओं-बावड़ियों से पानी भरकर ला रही हैं, और कुछ वृद्ध महिलाएँ घूरे पर कचरा डालने आती-जाती दिखाई दे रही हैं।

दिलचस्प यह है कि स्कूलों के खुलने और बरसात के आने का वक्त लगभग साथ-साथ ही होता है। बीती रात आँधी-तूफान के साथ जमकर बरसात हुई थी। अन्धड़ इतनी तेज़ थी कि कई पेड़ उखड़ गए। गाँव के कच्चे घरों के टिन के चद्दर उड़ गए। गली के नुक्कड़ पर स्थित नीम के पेड़ की मोटी-मोटी डालियाँ टूटकर गिर चुकी थीं। गाँव के किनारे, गुलमोहर का पेड़ जड़ समेत ही धराशायी हो चुका था। बरसात की वजह से गलियों में कीचड़ मच चुका

चित्र: योगेश्वरी

था। हालाँकि, बरसात इतनी भी नहीं हुई कि नालों में बाढ़ आ जाए। बरसात की वजह से मौसम में ठण्डक घुल चुकी थी। अब गली में बच्चे गीली मिट्टी के खिलौने बनाने में जुटे हुए दिखाई दे रहे थे।

स्कूल जाने वाले बच्चे सुबह से ही अपने-अपने घरों के काम में जुटे हुए थे। स्कूल का वक्त हुआ तो वे सब चल दिए। वैसे, स्कूल की तैयारी के नाम पर कुछ खास तैयारी तो करनी नहीं होती है। बस, एक थैलीनुमा बस्ता, पुरानी कॉपी और पैन वगैरह।

बच्चों को भी यह पता था कि स्कूल भले ही खुल जाए मगर अभी पढ़ाई होने वाली नहीं। सरकारी कागज़ों में कहने को तो स्कूल खुल जाते हैं, मगर स्कूल में पढ़ाई प्रारम्भ नहीं हो पाती। पढ़ाई शुरू न होने की वजहें गिनी-चुनी ही हैं, मगर ये गिनी-चुनी वजहें हैं काफी अहम। कुछ स्कूल ऐसे हैं जहाँ शिक्षकों की कमी एक प्रमुख वजह है। आम तौर पर, शिक्षा विभाग शिक्षकों के स्थानान्तरण का मामला स्कूल खुलने के साथ-साथ खोलता है। इस वजह से शिक्षक समुदाय शिक्षा विभाग के चक्कर लगाते रहते हैं। यह वक्त शिक्षकों के लिए काफी तनाव भरा होता है।

दूसरी वजह है, वक्त पर पाठ्यपुस्तकों की उपलब्धता न होना। पाठ्यपुस्तकों के बिना हमारे यहाँ पढ़ाई शुरू नहीं हो पाती। ग्रामीण इलाकों में किताबें समय पर नहीं पहुँच पातीं। हालाँकि, कई बार तो समय पर पर्याप्त रूप से किताबें छप ही नहीं पातीं कि स्कूलों में सही समय पर पहुँच सकें। इस वजह से कई बार तो आधा शिक्षा सत्र निकल जाने तक भी पाठयपुस्तकें उपलब्ध नहीं हो पातीं।

तीसरी वजह पारम्परिक कही जा सकती है। स्कूल खुलने के तुरन्त बाद पढ़ाई का प्रारम्भ न होना, एक परम्परा ही बन चुकी है। शिक्षकों से लेकर शिक्षा विभाग तक, हर किसी

के दिमाग में यह बात पैठ बना चुकी है कि असल पढ़ाई तो झण्डे से झण्डे (15 अगस्त से 26 जनवरी) तक होती है।

पहला दिन मैला

स्कूल शुरू होने की घण्टी बज चुकी थी, मगर अब तक कुल जमा 15-17 बच्चे ही पहुँचे थे। पहला दिन जो था। छठी में नारंगी अकेली ही लड़की दिख रही थी। उधर मास्साब प्रधानाध्यापक के कमरे में बैठे कागज़ों में खोए हुए थे।

बच्चे स्कूल कैम्पस में चहलकदमी कर रहे थे। कैम्पस के हैण्डपम्प पर कुछ महिलाएँ कपड़े धो रही थीं। स्कूल की चारदीवारी की टूटी-फूटी मुँडेर पर बकरियाँ टहल रही थीं और उस पर फूट आई हरी-भरी घास पर मुँह मार रही थीं।

मास्साब बाहर आए और बच्चों को इशारे से अपनी ओर बुलाया, "चलो, ज़रा इस कैम्पस की सफाई कर डालो।"

बच्चों ने मास्साब के कहे अनुसार झाड़ू उठाई और सफाई कर कचरा समेटने लगे। मास्साब भी बच्चों के बीच आकर उनके साथ सफाई में जुट गए।

तकरीबन दो महीनों से बन्द स्कूल की दशा खराब हो चुकी थी। स्कूल कैम्पस में पशुओं के घुसने से जहाँ-

चित्र: हीरा धुर्वे

तहाँ गोबर फैला पड़ा था। करीब दो-ढाई घण्टे की मेहनत रंग लाई व स्कूल का अगवाड़ा-पिछवाड़ा साफ हो गया।

अभी स्कूल की घण्टी भी अपनी जगह पर नहीं टँगी थी। बच्चों ने कमरों में झाँककर देखा तो पाया कि अभी कमरे बैठने लायक नहीं हैं।

भागचन्द्र छठी कक्षा का सबसे ऊँचा और बलवान बच्चा था। वह मास्साब के कमरे की ओर हिम्मत करके गया और पूछने लगा, "मास्साब, कमरे साफ कर दें?"

मास्साब ने भागचन्द्र को देखा तो नहीं मगर सिर हिलाकर स्वीकृति दे दी।

भागचन्द्र ने सभी बच्चों को आवाज़ लगाई और कमरों की सफाई की योजना बना डाली। भागचन्द्र ने ताकत लगाकर दरवाज़े की कुण्डी खोली। "बाप रे, भीतर तो बुरा हाल है!" सभी ने मिलकर काफी मेहनत से सब कमरों की सफाई कर डाली। अब तक दोपहर हो चुकी थी। बच्चे समझ चुके थे कि मास्साब कक्षा में आने वाले नहीं हैं इसलिए वे सब खेल खेलने में मशगूल हो गए।

जान-पहचान

पिछले कई दिनों से बच्चे स्कूल तो आ रहे थे, मगर वे शिक्षकविहीन कक्षा में कुछ देर रुकते और घर को लौट जाते।

आखिर एक दिन आ ही गया जब मास्साब कक्षा में आए।

"ऐ... मास्साब आ रहे हैं!" डमरू बोला। "चलो रे, मास्साब आ रहे हैं!"

मास्साब को आते देख बच्चे कक्षा में घुस चुके थे। मास्साब ने कक्षा के कमरे पर नज़र घुमाई, "वाह, कमरे की सफाई तो बढ़िया हो गई। ...तो तुम छठी में आ गए हो?" सभी बच्चों ने एक-साथ 'हाँ' में जवाब दिया। मास्साब के लिए कक्षा छठी के बच्चे नए थे।

"अच्छा, तो छठी में एक ही लड़की है!"

इस बार नारंगी ने सिर हिलाकर जवाब दिया।

"अच्छा, तो कल से हमारी पढ़ाई शुरू होगी, मगर एक काम करना होगा..." मास्साब कहते-कहते रुक गए। बच्चे मास्साब की ओर टकटकी लगाए हुए थे।

"ऐसा करते हैं, सबसे पहले हम सब एक-दूसरे को जान तो लें।" मास्साब ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा। अब तक सभी बच्चे कक्षा के फर्श पर बैठ चुके थे।

"मेरा नाम तुम जानते हो?" कक्षा में 'हाँ-नहीं' की आवाज़ गूँज रही थी।

मास्साब ने अपना परिचय दिया और फिर सबसे कहा कि बारी-बारी से अपना नाम और उन्हें क्या अच्छा लगता है या अपने बारे में कोई अन्य चीज़ बताएँ।

"डमरू मास्साब!"

मास्साब ने हँसते हुए बोला, "आपका नाम 'डमरू मास्साब' है?" पूरी कक्षा में हँसी का वातावरण बन गया।

"नहीं... डमरू।"

"अरे, ये तो बड़ा मज़ेदार नाम है!" मास्साब अपनी कुर्सी खिसकाते हुए बोले।

"मास्साब, मुझे खेलना बहुत अच्छा लगता है।" डमरू ने बताया।

"भागचन्द्र मास्साब!" कक्षा फिर से हँसने लगी। भागचन्द्र को समझ में आ गया और उसने फिर से अपना नाम दोहराया, "भागचन्द्र। मुझे भी खेलना पसन्द है।"

"चन्दर। मुझे क्रिकेट खेलना अच्छा लगता है।"

"केशव। मुझे दोस्तों से बात करना अच्छा लगता है।"

"विष्णु। मुझे भी।"

"क्या 'मुझे भी'? तुम्हें क्या अच्छा लगता है? क्या तुम यह कह रहे हो कि केशव की तरह तुम्हें भी दोस्तों से बात करना अच्छा लगता है?" मास्साब ने सवाल किया।

विष्णु शरमाकर बोला, "हाँ, मास्साब।"

"हाहाहा! ठीक है, चलिए आगे बढ़ते हैं।" मास्साब ने अगले बच्चे की ओर इशारा कर उसे अपना परिचय देने को कहा।

"शाकिर। खेलना, दोस्तों से बात करना और भिण्डी की सब्ज़ी पसन्द है।"

बस, फिर क्या था! कक्षा में ज़ोर का ठहाका लगा। मास्साब भी खिलखिला रहे थे।

"रघु, मास्साब। मुझे खेत में जाना पसन्द है।"

"नारंगी। मुझको दोस्त बनाना अच्छा लगता है।"

"अच्छा, ठीक है। आगे बताओ नाम।" मास्साब ने इशारा किया।

"मास्साब, इसरार... खेलना, साइकिल चलाना पसन्द है।"

"वेरी गुड! तो चलो, अब कल से पढ़ाई शुरू कर देंगे। आज हम एक काम करते हैं..."

यह सुन बच्चे कक्षा के बाहर जाने लगे। मास्साब ने रोका, मगर बच्चे रुकने का नाम ही नहीं ले रहे थे। अबकी बार मास्साब ताकत से बोले, "अरे, कहाँ जा रहे हो?"

मास्साब को एहसास हुआ कि उन्होंने बच्चों को 'काम' का कहा है इसीलिए वे कक्षा के बाहर भागे जा रहे हैं। इसलिए उन्होंने बच्चों को रोका और बोले, "जो काम करना है, उसके बारे में सुन तो लो। सबसे पहले, जो काम करना है हम उसकी बात करेंगे। काम करने के पहले योजना तो बनानी पड़ेगी न! ...तो मैं ये कह रहा था कि तुम सब को एक

काम करना है – कल अपने-अपने घर से फ्यूज़ बल्ब लेकर स्कूल आना है।"

फूज बल्ब!

बच्चों में खुसुर-फुसुर शुरू हो चुकी थी। बच्चों को मास्साब की बात समझ में नहीं आ रही थी। इसलिए वे कभी एक-दूसरे को ताकते तो कभी शिक्षक को।

आखिर नारंगी से रहा नहीं गया। उसने हिम्मत कर धीरे-से पूछना उचित समझा। मगर वह कुछ और ही पूछ बैठी, "मास्साब, फूज बल्ब से क्या करेंगे?" दरअसल, वह पूछना चाह रही थी कि फ्यूज़ बल्ब होता क्या है।

मास्साब ने नारंगी की ओर देखा। "अच्छा, ऐसा करते हैं कि 'क्या करेंगे' ये तुमको आज नहीं बताते। तुम सबको कल पता चल जाएगा जब तुम खुद करोगे। हाँ, बल्ब ज़रूर लेकर आना।"

कई बच्चों को समझ में नहीं आया था कि आखिर फ्यूज़ बल्ब होता क्या है। थोड़ा रुककर मास्साब ने पूछा, "अच्छा, पहले ये बताओ कि 'फ्यूज़ बल्ब' समझ गए न?"

मास्साब को सभी के चेहरे प्रश्नमय दिख रहे थे। बच्चे 'ना' कहने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे। नारंगी ने एक बार फिर कोशिश की। वह कक्षा में खड़ी हो गई। मास्साब ने नारंगी को खड़ा देख बैठने का इशारा किया।

चित्र: दीपा ध्रुर्वे

नारंगी फिर भी खड़ी थी।

मास्साब अनुमान लगा रहे थे कि नारंगी कुछ पूछना चाह रही है। "क्या पूछना चाहती हो?"

"मास्साब, ये फूज बल्ब कहाँ मिलेगा?" नारंगी धीरे-से बोली। मास्साब को समझ में आया कि बच्चे शायद फ्यूज़ बल्ब का मतलब ही नहीं समझ पा रहे हैं। "...अच्छा, तो पहले समझ लो। देखो, फ्यूज़ बल्ब मतलब खराब हो चुका बल्ब... जो बल्ब जल नहीं रहा हो।"

"अच्छा!" इतना जान नारंगी बोली, "अरे, वो! देखो, बोलने में नहीं आ रहा। ...समझ गई! जिस बल्ब के अन्दर का पतला-सा तार झड़ जाता है वो फूज बल्ब होता है।"

"हाँ, बिलकुल ठीक कहा नारंगी ने!" मास्साब हँस दिए, "ऐसा बल्ब जो खराब हो गया हो, वही फ्यूज़ बल्ब होता है। तो आज एक काम करते हैं, हम टोलियाँ बना लेते हैं। टोली तो समझते हो न? एक टोली में चार बच्चे होंगे।"

टोली बनाने का काम शुरू हो चुका था। बच्चों को यह पता नहीं था कि आखिर टोलियाँ क्यों बनाई जा रही हैं। फिर भी वे मास्साब के निर्देशों का पालन कर रहे थे। कक्षा में अफरा-तफरी मच गई थी। इस अफरा-तफरी से मास्साब किंचितमात्र भी परेशान नहीं थे। टोलियाँ बनाने के दौरान बच्चे भ्रमित हो रहे थे। कभी वे एक टोली में होते तो कभी किसी दूसरी टोली में। किसी टोली में दो बच्चे ही होते तो किसी में छह-सात। काफी देर तक बच्चों में कशमकश चलती रही। आखिर मास्साब को हस्तक्षेप करना पड़ा।

टोलियाँ बन चुकी थीं। मास्साब ने निर्देश दिया कि अब ये टोलियाँ पक्की बनाई जा चुकी हैं। इन टोलियों में बदलाव नहीं होना चाहिए। "तो चलो, कल मिलते हैं।" मास्साब ने बच्चों को जाने की इजाज़त दे दी थी। स्कूल से घर जाते हुए बच्चों के बीच फ्यूज़ बल्ब की चर्चाएँ ज़ोरों पर थीं। वे फ्यूज़ बल्ब को पाने की योजना बना रहे थे।

बच्चों की मास्साब से हुई इस मुलाकात ने उन्हें 'कुछ करने' का न्यौता जो दे दिया था।

चित्र: कैरन हैडॉक

स्कूल का आखिरी दिन

(तीन साल बाद)

नारंगी कहे जा रही थी, "इस स्कूल में सबसे ज़्यादा मज़ा विज्ञान में आया। 'बाल विज्ञान' तो कमाल का है! विज्ञान के कारण किसी को डाँट नहीं पिलाई। मास्साब ने विज्ञान की पढ़ाई में किसी को मारा भी नहीं।"

"ये तेरे 'विज्ञान' की तारीफ सुन-सुनकर मेरे कान पक गए। जब देखो 'विज्ञान' की ही बात करती रहती है। ऐसा क्या जादू कर दिया 'विज्ञान' ने? जब देखो, सवाल करती रहती हो! जब देखो, हर चीज़ में कुछ-न-कुछ देखती रहती हो!"

नारंगी ने माँ के कन्धे पर अपना सिर रख दोनों चोटियों को माँ के गले में डाला, और फिर अपने हाथों को फैलाकर कहे जा रही थी, "मज़ा ही मज़ा!" इतना कहकर नारंगी चलती बनी।

दरअसल, नारंगी जब सवाल करती, जब बेबाक बात करती तो माँ के दिल में खुशी की लहरें हिलोरे लेने लगतीं। माँ का मन खिल उठता। ऐसा ही हो रहा था अभी भी माँ के दिल में, मगर वे व्यक्त नहीं कर रही थीं नारंगी के सामने। वैसे नारंगी भी समझ रही थी, माँ के दिल की बात।

शाम का वक्त हो चुका था। नारंगी और उसके सभी दोस्त बाग में आ चुके थे। बाग में बरगद के पेड़ के नीचे गोल घेरे में अपने घुटनों को बाँहों में बाँधकर सभी चुपचाप बैठे थे। आज वे खेल नहीं रहे थे। वे चुप थे। वे सोच रहे थे, और सोचते ही जा रहे थे।

सोच का सफर

नारंगी की नज़रें घूमने निकल चुकी थीं। उसकी नज़र अपने घर की छत पर जाकर रुक गई। वह सोचे जा रही थी कि आखिर खपरैलों को पहली बार किसी इन्सान ने कैसे बनाया होगा। यह सोचते हुए वह पुराने ज़माने में पहुँच गई थी। सोचते-सोचते, पुराने ज़माने से लौटते हुए, वह अपने गाँव के कुम्हार - रतन दादा - के पास पहुँच गई कि कैसे वो मिट्टी इकट्ठा करने से लेकर खपरैल बनाकर उसे पकाते हैं। फिर वह सोचने लगी कि आखिर कैसे किसी के दिमाग में यह बात आई होगी कि चलो खपरैल बनाएँ। और जब किसी ने सबसे पहले खपरैल बनाए होंगे तो क्या उसे वैसा ही इनाम मिला होगा जैसे कि 26 जनवरी या 15 अगस्त पर स्कूल में मिलता है, या जैसे टीवी में लोगों को

इनाम मिलते हैं। नारंगी ने अपने सिर को झटक दिया, मानो उसकी एक सोच ने दूसरी सोच से कहा कि अरे नहीं, ऐसा कुछ भी नहीं हुआ होगा।

नारंगी को उसकी माँ खपरैल वाली छत से उतरती हुई दिख रही थीं। अब वह अपनी माँ के बारे में सोचने लगी। स्कूल में चल रहे विज्ञान के पाठ में मछली के गलफड़े देखने का एक अभ्यास था। उसके मास्साब ने सभी को कहा था कि वे कहीं से मछली पकड़कर उनके गलफड़े देखें। तो उसकी माँ ने ही तो मछली के गलफड़ों को खोलकर देखने में उसकी मदद की थी। माँ ने कितने अच्छे तरीके से मछली को पकड़ा था! मछली को मरने भी नहीं दिया। उसके मुँह के बगल के गलफड़े को अपनी एक उँगली से थोड़ा-सा उठाकर, माँ ने सुर्ख लाल रंग के गलफड़े दिखाए थे। फिर माँ ने यह भी तो बताया था कि ताज़ी मछली में ये गलफड़े सुर्ख लाल होते हैं, और मछली के मरने के बाद गलफड़े गहरे कत्थई होने लगते हैं। नारंगी ने स्कूल की कक्षा में अपनी माँ के शब्दों में ही मछली के गलफड़ों वाली बात बताई थी, और मास्साब ने उसको शाबाशी दी थी। उँगली में बालों की लट को लपेटे वह सोचे, और सोचे जा रही थी।

क्या खोया, क्या पाया?

बच्चों का ध्यान भंग हुआ। मास्साब जो टहलते हुए चले आ रहे थे। मास्साब को नज़दीक पाकर सभी बच्चे उठ खड़े हुए।

"तो बच्चा-पार्टी आ चुकी है!" मास्साब अब बच्चों के बीच में थे।

"तो, अब आगे क्या करने वाले हो? आगे स्कूल जाने वाले हो या...?"

भागचन्द्र बोला, "पता नहीं..."

"तुम बताओ, नारंगी।" नारंगी कुछ बोली नहीं।

बच्चों की मिडिल स्कूल की पढ़ाई पूरी हो चुकी थी। स्कूल का यह दूसरा पड़ाव था। पहला पड़ाव पाँचवीं कक्षा का था। अब यहाँ से तीसरे पड़ाव की यात्रा प्रारम्भ की जानी है।

माध्यमिक स्तर पर बच्चे विज्ञान की जिस प्रक्रिया से गुज़रे हैं, वह उनके ज़हन में अंकित हो चुकी है। बच्चों में एक जुझारूपन और खोजी प्रवृत्ति का विकास काफी हद तक हुआ, जो उन्हें कहीं-न-कहीं काम आएगा। अगर फायदे-नुकसान की बात न भी करें, तो इतना तो तय है कि विज्ञान शिक्षण के तरीके से बच्चे रू-ब-रू हो पाए। बच्चों ने प्रयोग करना सीखा। बच्चों ने 'अवलोकन' का लुत्फ उठाया।

बच्चों के ऊपर विज्ञान शिक्षण ने तथाकथित 'दया' नहीं दिखाई कि वे कुछ कर नहीं सकते इसलिए उन्हें पका-पकाया परोस दिया जाए। बल्कि बच्चों की ताकत को समझा कि वे बहुत कुछ कर सकते हैं। बच्चों के सामने पल-पल और कदम-दर-कदम

चुनौतियाँ पेश की गईं। उन चुनौतियों से पार पाने का अर्थ हुआ – बच्चों में आत्मविश्वास पैदा होना। अगर बच्चों में यह जज़्बा पैदा हो जाए कि वे भी कुछ सार्थक कर सकते हैं, तो यह कोई मामूली बात तो नहीं! बच्चों में ईमानदारी के बीज पनपाने में भी विज्ञान शिक्षण ने एक हद तक भूमिका अदा की। बच्चे जो प्रयोग करते और निष्कर्ष निकालते, उन्हें ही लिखा जाता। बच्चों को हर घटना पर सोचने को मजबूर किया जाता। इस अर्थ में, बच्चों ने वैज्ञानिक प्रक्रिया को सहज रूप से महसूस किया। और सबसे बड़ी बात कि बच्चों को मज़ा आया। यही असल विज्ञान है।

मज़ा याद रहेगा

चुप्पी के माहौल को मास्साब ने तोड़ा। माहौल को थोड़ा हल्का करने के लिए मास्साब मुस्कुराए और बोले, "तो, बहुत अच्छे रहे तुम सभी के साथ तीन साल। मैंने, तुमने और सभी ने खूब मज़ा किया!" मास्साब बैठते हुए आगे बोले, "अब आगे पढ़ाई जारी रखना। और अगर कहीं मेरी ज़रूरत महसूस हो तो बताना। पक्का तो नहीं कह सकता कि मैं तुम्हारी मदद कर ही सकूँगा।"

नारंगी बोली, "मास्साब... विज्ञान की क्लास हमेशा याद रहेगी।" सभी बच्चों ने एक स्वर में कहा, "ये तो सही है।"

चित्र: उर्वी

मास्साब और बच्चे एक-साथ बोल पड़े, "बहुत मज़ा आया।"

बच्चे और मास्साब एक-दूसरे की ओर प्यार भरी नज़रों से देख रहे थे। मास्साब ने नज़रें घुमाईं और एक सुकून भरी गहरी साँस खींचते हुए गहरी सोच में डूब गए। पश्चिम का आसमान ललिया रहा था। लाली पुते आसमान में सूरज धँसता हुआ दिख रहा था। सूरज की रोशनी धीरे-धीरे कम होती जा रही थी। पूनम का चाँद विपरीत दिशा से अपनी रोशनी बिखेरने के लिए उतावला दिख रहा था। चिड़ियें बरगद के पेड़ पर डेरा जमाने लगी थीं और उनके कलरव ने उस माहौल को खुशनुमा बना दिया था।

मास्साब और बच्चे उठे, और चल दिए।

(समाप्त)

कालू राम शर्मा (1961-2021): अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, खरगोन में कार्यरत थे। स्कूली शिक्षा पर निरन्तर लेखन किया। फोटोग्राफी में दिलचस्पी। *एकलव्य* के शुरुआती दौर में धार एवं उज्जैन के केन्द्रों को स्थापित करने एवं मालवा में विज्ञान शिक्षण को फैलाने में अहम भूमिका निभाई।

'खोजबीन' शृंखला के अन्तर्गत प्रकाशित किए गए लेख आपने *संदर्भ* के पिछले कुछ अंकों में पढ़े। ये सभी लेख वाणी प्रकाशन द्वारा 2019 में प्रकाशित कालू राम शर्मा की किताब *खोजबीन का आनंद* से लिए गए थे। इन लेखों में होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के विभिन्न पहलुओं का लेखा-जोखा है जिसे कहानी या किस्सागोई शैली में लिखा गया था।

वो नज़रिया

माधव केलकर

किसी भी परिवार में बच्चे की पैदाइश के साथ उस परिवार की ज़िम्मेदारियों में इज़ाफा हो जाता है। यदि पैदा हुआ बच्चा शारीरिक या मानसिक रूप से चैलेंज्ड हो तब तो बच्चे की परवरिश में बहुत सारे विशेष प्रयास करने पड़ते हैं क्योंकि हमारे आसपास की समस्त व्यवस्थाएँ, साजो-सामान, किताबें, लेखन सामग्री वगैरह सामान्य इन्सानों को ध्यान में रखकर बनाई जाती हैं। इस सामान्यीकरण की वजह से शारीरिक या मानसिक रूप से चैलेंज्ड बच्चों की अनदेखी हो जाती है। ऐसे किसी बच्चे की शिक्षा में कौन-सी चुनौतियाँ आती हैं और ऐसे बच्चे का सामाजीकरण (सोशलाइज़ेशन) किस तरह हो पाता है, ऐसी ही कुछ बातों को रेखांकित करने की कोशिश की गई है इस संस्मरण में।

मेरी बड़ी बहन भारती का कुछ महीनों पहले निधन हुआ। वो सेरीब्रल पाल्सी की मरीज़ थी। किसी सामान्य इन्सान की तरह चलना, बोलना, हाथों से काम करना उसके लिए सम्भव नहीं हो पाता था। अक्सर हमारे घर पहली बार आने वाले परिचितों द्वारा या जब हम लोग किसी सार्वजनिक कार्यक्रम में बहन को लेकर जाते थे तब हमसे एक सवाल जो यकीनी तौर पर पूछा जाता था, वह था, "भारती खुद से क्या कर पाती हैं?"

हमारा एक-जैसा ही जवाब होता था, "वो अपना कोई भी काम खुद से नहीं कर पाती।" और फिर एक सहानुभूति की लहर दौड़ जाती थी। इस सवाल या सहानुभूति में गलत कुछ भी नहीं है। एक इन्सान को लेकर जिज्ञासा है और एक इन्सान के प्रति द्रवित भावनाएँ हैं।

जब हम एक सामान्य इन्सान के रूप में जीवन जीते हैं तो जीवन में कुछ तयशुदा पड़ाव होते हैं। मसलन, बचपन में पाँच साल के होते-होते शाला में दाखिला होना, फिर दसवीं-बारहवीं बोर्ड, फिर कॉलेज में दाखिला आदि। लेकिन जब आप एक असामान्य जीवन जी रहे होते हैं तो आपके जीवन में ये पड़ाव इतने सरल रेखीय रूप में नहीं आते हैं। मेरी बहन के जीवन में भी शाला का पड़ाव काफी कठिनाइयों के बाद ही आया।

यहाँ मैं अपनी बहन के शाला सम्बन्धी कुछ अनुभव बाँटना चाहता हूँ।

पढ़ाई का वो सिलसिला

पाँच साल का होते-होते जब मैंने स्कूल जाना शुरू किया था तो बहन भी ज़िद करती थी कि उसे भी स्कूल जाना है। ज़िद बोलकर नहीं, कन्धे पर बस्ता लटकाने का इशारा करके करती थी। उस समय उसे भी एक स्लेट, पेंसिल, कॉपी-किताब वगैरह लाकर दी गई थी। जब मैं पढ़ने बैठता था तो उसका भी बस्ता लेकर उसे साथ बिठाता था। वह भी स्लेट पर कुछ लिखने की कोशिश करती थी, अपनी किताब को वो मुश्किल से खोल पाती थी और किसी वाक्य या पैराग्राफ पर अंगुली रखकर मुझसे पूछती, "का?" मतलब 'यह क्या लिखा है'। इस तरह उसके साथ पढ़ने-लिखने का कुछ सिलसिला शुरू हुआ।

हम सबको ऐसा महसूस होता था कि स्कूल में और बच्चों के साथ बैठकर भारती को लाभ मिलेगा। घर के पास एक प्राथमिक शाला थी, वहाँ पूछताछ करने पर हैडमास्टर ने कहा, "एक हफ्ता बैठाकर देखिए।" फिर भारती रोज़ दो घण्टे के लिए स्कूल जाने लगी। एक हफ्ते बाद हैडमास्टर ने बताया कि "आपकी बच्ची ने हम लोगों को परेशान नहीं किया लेकिन गाहे-बगाहे हमारी कक्षा डिस्टर्ब होने लगती है। भारती बच्चों के लिए कौतूहल का केन्द्र बन जाती है। बच्चे उसके काफी करीब तक पहुँच जाते हैं, उसे छूकर देखना चाहते हैं, कोई उससे बात करता है, कोई टिफिन में से कुछ खिलाना चाहता है, कोई पीठ पर बैठना चाहता है, कोई उसकी चोटी गूँथना चाहता है। इसकी वजह से उसकी सुरक्षा हमारे लिए एक चिन्ता का सबब है। इसलिए हम और रिस्क नहीं लेना चाहते।" उन्होंने यह सलाह भी दी कि ऐसे बच्चों के लिए सामान्य शालाओं की बजाय स्पेशल स्कूल बेहतर रहते हैं।

तो, एक हफ्ते तक शाला जाने के बाद यह सिलसिला टूट गया। हमारे शहर में एक-दो अन्ध-मूक-बधिर शालाएँ थीं। उन शालाओं में आने वाले बच्चे भले ही अन्ध-मूक-बधिर हों लेकिन शारीरिक रूप से सामान्य होते थे। इसलिए साइन लैंग्विज, ब्रेल लिपि या सामान्य लेखन सीखकर वे शिक्षा की मुख्यधारा में

परीक्षा देना, परीक्षा पास करना जैसे पड़ाव पार करने की कोशिश कर पाते थे। लेकिन सेरीब्रल पाल्सी, डाउन सिंड्रोम वगैरह के मरीज़ बच्चों को इन शालाओं में दाखिला नहीं दिया जाता था। दूसरी समस्या थी कि मूक-बधिर शालाएँ घर से काफी दूर थीं।

तो, एक बार फिर 'घर का बच्चा घर में ही अच्छा' हो गया। लेकिन बहन के साथ किताबें पढ़ना, अखबार-पत्रिकाएँ दिखाना, कभी-कभी कहानी सुनाना, बारहखड़ी बुलवाना (जिसमें से वो कुछ बोल पाती थी), एक से दस तक गिनती बुलवाने की कोशिश करना (जिसमें वो दो, चार, पाँच और दस बोल पाती थी तथा एक, चार, पाँच अंगुलियाँ दिखा सकती थी) जारी रहा।

कुछ काम जिसमें उसकी मदद सम्भव थी, उसमें मदद लेते थे। उदाहरण के लिए, एक बाल्टी में साबुन का पानी बनाकर बाल्टी उसके पास रखे दें और कुछ कपड़े उसे दे दिए जाएँ तो वह उन कपड़ों को धीरे-धीरे साबुन के पानी में डुबो देती थी। कपड़े धोना तो उसके लिए सम्भव नहीं था। ऐसे ही, सब्ज़ी की टोकरी में आलू या प्याज़ रखना, कुकर की चार सीटी हो जाने पर माँ को गैस बन्द करने की याद दिलवाना, धुले कपड़े नियत जगह पर रखना वगैरह।

नई उम्मीद, नया नज़रिया

खैर, बड़ी बहन के लिए स्कूल की उम्मीद काफी बरसों बाद आई।

बात शायद तब की है जब मैं 16-17 बरस का रहा होऊँगा। स्कूल से लौटते समय तेज़ बारिश शुरू हुई और मैंने सड़क के किनारे की अधबनी इमारत में शरण ले ली। इमारत काफी हद तक बन चुकी थी। भीतर एक बोर्ड रखा था – स्नेह निकेतन विशेष विद्यालय। इस बोर्ड को देखकर मेरी आँखों में चमक आ गई।

मैंने अन्दर जाकर एक मैडम से पूछताछ की कि "क्या इस शाला में सभी तरह के विकलांग बच्चों को दाखिला मिलेगा?" (क्षमा करें उस समय विशेष

सक्षम बच्चे या दिव्यांग या सी.डब्लू.एस.एन. जैसे शब्द बोलचाल में नहीं थे।)

मैडम ने मुझसे पूछा, "क्या आपके घर पर भी कोई ऐसा बच्चा है?"

मैंने बताया, "जी, मेरी बड़ी बहन है।" तब तक एक अन्य मैडम वहाँ आ गई थीं। उन्होंने मुझे कुर्सी पर बिठाकर पूछा, "क्या हुआ है तुम्हारी बहन को?"

मैंने थोड़ा सकुचाते हुए बताया, "जी, वह पैदाइश से ही चल, बोल नहीं सकती। उसे सेरीब्रल पाल्सी बताया था डॉक्टर ने।"

बड़ी मैडम ने मुझसे पूछा, "क्या तुम्हारी दीदी बिलकुल भी कोई काम नहीं कर पाती?"

मैंने फिर अपना पहले का जवाब दोहराया, "वह सामान्य लोगों की तरह बोल नहीं पाती, चल नहीं पाती, हाथों से काम नहीं कर पाती। हाँ, बहुत हँसती और रोती है।"

बड़ी मैडम ने कहा, "दो-तीन महीने में यह स्कूल शुरू हो जाएगा। दो-तीन दिन बाद तुम अपनी माँ के साथ आना। हो सके तो बड़ी बहन को भी लेकर आना। लेकिन जब आप लोग आओगे तब यह सोचकर आना कि बड़ी बहन क्या-क्या कर पाती है। क्या नहीं कर पाती है, इस पर हम कोई बात नहीं करेंगे।"

बारिश रुकने के बाद घर आया और मैंने कहा, "भारती के लिए एक स्कूल है।" फिर पूरा वाकया बताया। और वह आखिरी बात भी कि बहन क्या-क्या कर पाती है, यह सोचकर जाना है।

माँ-पिता और मैं इस नए नज़रिये को पकड़कर बहन को साथ लेकर बैठे। माँ ने कहा, "चलो, भारती जो-जो कर पाती है, हम उसकी एक लिस्ट बनाते हैं।"

पहले हम सोचने लगे कि पढ़ने-लिखने में वो क्या कर पाती है। अक्षर, शब्द, गिनती, लिखना उसके लिए सम्भव नहीं था लेकिन कुछ अक्षर, शब्द और संख्याएँ वो बोल पाती थी। यह सब सोचते हुए थोड़ी निराशा हाथ लगी।

जब आसपास के परिवेश को ध्यान में रखकर सोचना शुरू किया तो मानो खज़ाना हाथ लग गया। भारती अपने सभी प्रमुख रिश्तेदारों को नाम से पहचानती थी, कौन भाई है, कौन दीदी, कौन काका, मौसी, नानी, दादी, मामा-मामी... सभी को पहचानती थी। पास-पड़ोस के अंकल-आंटी को भी पहचानती थी। भाई को भाऊ-भैया-दादा, बहन को ताई-दी..दी, इसी तरह काका, कुकू, मा..मा, आत्या (बुआ)। कुछ 60-70 शब्दों और कुछ इशारों से खुद को अभिव्यक्त कर पाना, उसे बखूबी आता था।

सब्ज़ियों में वह आलू, प्याज़, टमाटर, मिर्च, भिण्डी, लौकी, कद्दू, पालक, करेला पहचान लेती थी। कभी भी उससे कहा जाए कि टोकरी में से आलू निकालकर दो तो वह आलू ही उठाती थी।

फलों में आम, केला, सीताफल, सन्तरा, सेब, अंगूर पहचानती थी। कच्चा आम खाना टालती थी। इशारे से बताती थी कि खट्टा है।

गेहूँ, चावल, दाल को पहचानती थी। दाल-चावल खाते समय घी की कटोरी की ओर इशारा करती थी कि उसे दाल-चावल घी डालकर दिया जाए।

गरम चाय या दूध को फूँककर ठण्डा करने की कोशिश करती थी।

रोटी, चावल, दाल, सब्ज़ी, घी, तेल, भजिए, कढ़ी, चटनी, अचार, लड्डू, चिवड़ा, चकली सभी कुछ पहचानती थी और चाव से खाती भी थी। यदि दाल-सब्ज़ी में नमक कम हो तो बता पाती थी और तीखी हो गई हो तो वह भी इशारे से बता देती थी।

कपड़े धोने के साबुन और नहाने के साबुन को भी पहचान लेती थी।

कपड़ों में साड़ी, ब्लाउज़, पेंट, शर्ट, अंडरवियर, ब्रेसियर, बनियान, पजामा पहचान लेती थी। यदि किसी मैग्ज़ीन में पेंट-शर्ट पहनी महिला दिखाई दे तो वह मुँह पर हाथ रखकर ऑऑऑ (शेम शेम) करती थी। इसी तरह स्लीवलेस ब्लाउज़ या स्लीवलेस कुर्ते वाली महिला की तस्वीर देखकर भी ऑऑऑ करती थी। पुरुषों के अंडरवियर-बनियान के विज्ञापन देखकर मुँह फेर लेती थी। सिनेमा में लव सीन आने पर आँखों पर हाथ रखकर माँ को बताती कि उसने आँख बन्द कर ली है।

जब हम यह सब सूचीबद्ध कर रहे थे तो पिताजी ने कहा, "ये 18-19 साल की लड़की है। पारम्परिक रूप से शिक्षा-दीक्षा न भी हो सकी हो, लेकिन बिलकुल कुछ न जानती हो, ऐसा भी नहीं है। कुछ तो जानती है, समझती है, बताने की कोशिश करती है। फिर भी हम यही कहते हैं कि इसे कुछ नहीं आता।" पहली बार हमने इस बदले हुए नज़रिये से भारती को देखा था। उसकी समझ या ज्ञान को स्वीकार भी किया था।

खैर, चन्द रोज़ बाद स्नेह निकेतन शाला जाना हुआ। साथ में भारती को भी ले गए थे। प्राचार्य मैडम से मुलाकात हुई। उन्होंने बहुत प्यार से भारती से बात की। माँ से भारती की निजी ज़रूरतों जैसे भोजन, पानी पीना, पेशाब, पाखाना, पीरियड्स आदि आदतों के बारे में कुछ सवाल किए। इन सब नित्यक्रियाओं को निपटाने में किसी आया की कितनी मदद चाहिए होगी, खुद से क्या कर लेगी जैसी जानकारियाँ लीं। उसे गुस्सा कब आता है, नाराज़गी

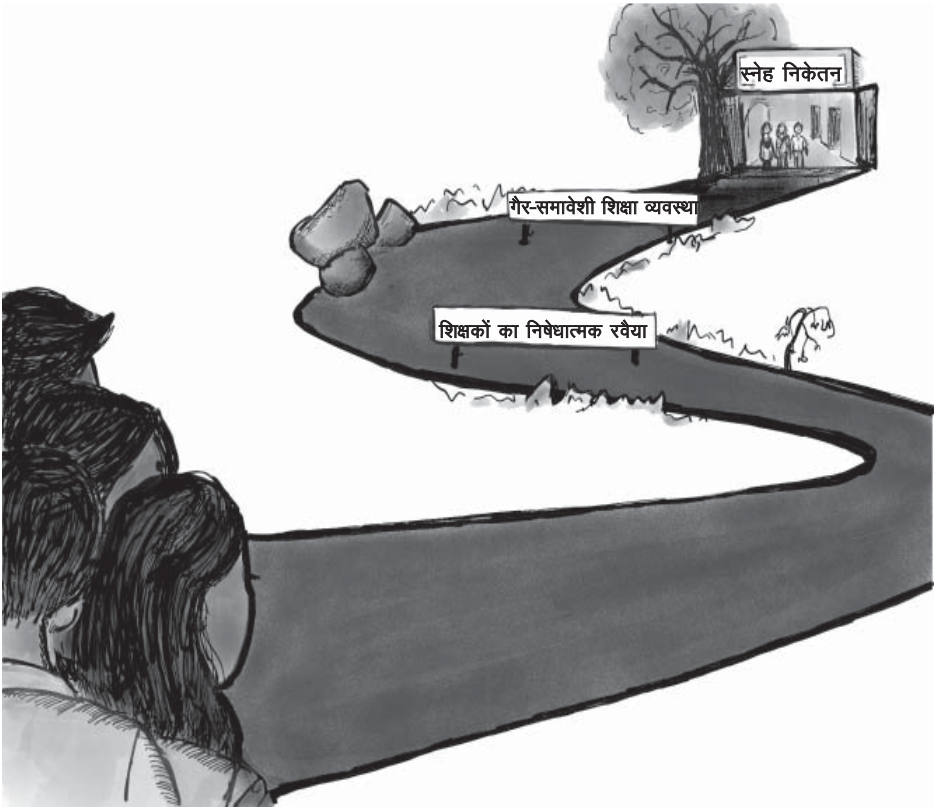

कैसे दिखाती है, क्या कभी आक्रामक भी हो जाती है, छोटे या बड़े बच्चों के साथ दोस्ती बनाने में कितनी सहज है, क्या उसे कोई दवाई वगैरह देते हैं जैसे सवाल भी उन्होंने किए।

स्कूल में दाखिला

कुछ दिनों बाद भारती का स्कूल जाने का सिलसिला शुरू हुआ। सुबह 9 बजे भारती के साथ सायकल रिक्शा में माँ या पिताजी जाते और स्कूल छोड़कर वापस आते थे। दोपहर 3 बजे एक बार फिर माँ स्कूल तक जाती थी और सायकल रिक्शा से भारती को लेकर घर वापसी होती थी।

हमारे पास-पड़ोस के परिचित भारती से पूछते थे कि "स्कूल अच्छा लग

रहा है?" तो भारती 'हाँ' कहती थी। "स्कूल में क्या करती हो," पूछने पर वह इशारे से बताती, "लिखती हूँ।" कभी कोई पूछता, "स्कूल में मार भी पड़ती होगी?" तो भारती तुरन्त इनकार करती और अगले ही पल हँसने लगती।

मैं भी बीच-बीच में उत्सुकतावश स्कूल जाकर देख आता कि बहन कक्षा में क्या कर रही है। कभी-कभी प्राचार्य मैडम से भी मुलाकात होती थी। एक बार उन्होंने मुझे पूरा स्कूल घुमाया था। बच्चों की पढ़ाई के लिए सामग्री, खेल की सामग्री, मेडिकल इमर्जेंसी की सामग्री, टीचर्स के साथ मिटिंग कक्ष, बच्चों के लिए बड़ा असेम्बली हॉल, बच्चों द्वारा बनाया गया क्राफ्ट वर्क वगैरह – सब कुछ सिलसिलेवार सहेजा गया था। इस शाला में बच्चों की शारीरिक क्षमताओं के हिसाब से कक्षाएँ बनाई गई थीं। जो बच्चे शारीरिक रूप से विशेष सक्षम थे, उनकी पारम्परिक कक्षाएँ होती थीं और वे बोर्ड परीक्षा वगैरह भी देते थे। मानसिक रूप से अक्षम बच्चों की कक्षाएँ अलग से लगती थीं। स्कूल में 6 साल से लेकर 25 साल के बच्चे को भी दाखिला दिया गया था।

बच्चों का आर्टवर्क देखकर कभी लगता ही नहीं था कि शारीरिक या मानसिक बाधाएँ सृजनशीलता का रास्ता रोक सकती हैं। हर बच्चे द्वारा बनाए गए चित्र, लिखे गए कागज़ को उसी बच्चे के नाम से बनी फाइल में रखा जाता था (जिसे हम आजकल पोर्टफोलियो कहते हैं)। कभी-कभी बच्चे स्कूल में आए विज़िटर या अपने माता-पिता या अपने सहपाठियों के माता-पिता को अपनी फाइल दिखाते भी थे। कई बच्चे मुझे भारती के भाई के रूप में पहचानते थे। एक बच्ची मेरी माँ को देखकर खुशी से चिल्लाने लगती थी, "भारती आई... भारती आई..." (मतलब भारती की माँ)। फिर वह माँ की गोद में बैठ जाती थी।

इस शाला में बच्चों को काफी सहजता से सारा दिन व्यस्त रखा जाता था। भारती की कक्षा की शुरुआत प्रार्थना व राष्ट्रगीत से होती थी, फिर कुछ भाषा, कुछ गणित, कहानी सुनना, हावभाव से गीत गाना, बीच में भोजन अवकाश और आधा घण्टा सोना। साथ ही, कुछ आर्ट-क्राफ्ट वर्क, कुछ खेलकूद, कभी कहानियों का नाट्य रूपान्तरण, कभी मिलकर कुछ खाने के लिए बनाना तो कभी बालमेला।

शाला की गतिविधियों के बारे में सब कुछ बता पाना शायद सम्भव नहीं होगा। लेकिन मैं कुछ छोटे-मोटे ब्यौरे देना चाहूँगा जिसका सम्बन्ध मेरी बहन से है।

जैसा मैंने बताया कि सभी बच्चों को उनकी क्षमता के मुताबिक सृजनशीलता दिखाने के मौके दिए जाते थे। मुझे याद है, भारती एक दिन स्कूल से बस्ते में एक ड्रॉइंगशीट का टुकड़ा रखकर लाई थी। उस ड्रॉइंगशीट पर एक पानी में

तैरती बतख बनाई गई थी। रंगीन क्रेयॉन की आउटलाइन और बीच के हिस्से में महीन रेत चिपकी हुई। नीचे लिखा था - बड़ी भारती (कक्षा में दो भारती थीं इसलिए एक बड़ी और एक छोटी)। हम सबने इसे देखा और सराहा भी। फिर बहन से ही 'हाँ-ना' शैली में सवाल पूछकर पता चला कि ड्रॉइंगशीट पर बतख किसी और बच्चे ने बनाई, उस पर गोंद किसी और बच्चे ने लगाकर दी, फिर उस गोंद लगी बतख पर भारती ने मुट्ठी में रेत लेकर गिराई। इस तरह मिलकर बनाई गई थी यह बतख।

एक और वाकया मुझे याद आता है, जब कछुए और खरगोश की चिरपरिचित कहानी का नाट्य रूपान्तरण किया जा रहा था। उस नाटक में भारती को कछुए का किरदार निभाना था। वह इस नाटक को लेकर काफी उत्साहित थी। हम लोग नाटक देखने गए थे। उसने कछुए का मुखौटा पहनकर तेज़ रेंगने की कोशिश की, फिर तय जगह पर सोते हुए खरगोश को पार कर रेस जीतने की खुशी का अभिनय भी किया।

परीक्षा और रिपोर्ट कार्ड

यदि परीक्षा और रिपोर्ट कार्ड की बात न करूँ तो बात शायद अधूरी रह जाएगी। इस शाला में शारीरिक रूप से विशेष सक्षम बच्चे जो पाँचवीं या आठवीं बोर्ड परीक्षा देना चाहते थे, उनके लिए सामान्य कक्षाएँ और अन्य हुनर सीखने के मौके होते थे। उन्हें वार्षिक परीक्षा भी देनी होती थी। सेरीब्रल पाल्सी या डाउन सिंड्रोम या अन्य मानसिक रोगों से जूझते बच्चों की कोई विशेष परीक्षा नहीं होती थी। इन बच्चों का सालभर का पोर्टफोलियो, व्यवहार, सूझबूझ और शिक्षकों के निरीक्षण ही इनके रिपोर्ट कार्ड के आधार होते थे।

जब शाला में भारती का पहला साल समाप्ति की ओर था तो एक सूचना मिली कि अमुक तारीख को भारती की कक्षा की परीक्षा होगी। फिर हमने उसको तारीख व परीक्षा के बारे में बताया। भारती ने कैलेंडर की ओर इशारा किया यानी कैलेंडर में परीक्षा की तारीख पर निशान लगा दिया जाए। परीक्षा के दिन उसने अपनी छाती पर हाथ रखकर माँ को बताने की कोशिश की कि परीक्षा के नाम से दिल तेज़ी-से धड़क रहा है।

खैर, परीक्षा के बाद रिज़ल्ट की घोषणा हुई। एक रिपोर्ट कार्ड दिया गया। वो रिपोर्ट कार्ड मेरे लिए या माता-पिता के लिए अनोखा था। हमने इससे पहले ऐसा कोई प्रगति पत्रक देखा ही नहीं था। प्रगति पत्रक का एक हिस्सा अकादमिक दक्षताओं से सम्बन्धित था। दूसरा हिस्सा बच्चे के व्यवहार और अन्य बच्चों के साथ किस तरह सामंजस्य बन पा रहा है, उसे लेकर था। बतौर नमूना मैं यहाँ उसे बताने की कोशिश कर रहा हूँ।

स्नेह निकेतन (सत्र 1980-81)

भाषा–

भारती कक्षा में सुनाई जाने वाली कहानियों को ध्यान से सुनती है। जो बात समझ में न आए, उसे 'का' कहकर पूछ लेती है।

कविताओं को बाकी बच्चों के साथ गाने की कोशिश करती है।

हिन्दी के कुछ स्वर और व्यंजन बोल पाती है। बाकी स्वर-व्यंजन के लिए कोशिश कर रही है।

किताबों, मैग्ज़ीन आदि के चित्र देखना पसन्द है। ध्यान से चित्रों को देखती है।

साथी बच्चों के साथ बातचीत की कोशिश करती है। 'हाँ' या 'ना' में जवाब देती है।

गणित–

भारती एक से दस तक की संख्याओं को बोलने की कोशिश करती है। अंगुलियों से 1, 4, 5, 10 संख्या बता सकती है।

वो गोल, त्रिकोन, चौकोन आकारों को पहचान लेती है। उसे एक टोकरी में दिए गए आकारों में से गोल अलग करने के लिए कहा जाए तो वह ऐसा कर लेती है।

रंगों को पहचानती है। लाल, पीला, नीला या हरा गुटका उठाकर दे सकती है।

भारती कम और ज़्यादा को बता पाती है। यदि किसी ढेर में पाँच बीज हों और दूसरे ढेर में 20 बीज हों तो वह कम-ज़्यादा बीजों की ढेरी को पहचानकर उस पर अंगुली रख सकती है।

घड़ी को देखकर समय का अन्दाज़ा लगाने की कोशिश करती है।

अन्य गतिविधियाँ–

इस साल भारती ने दो नाटकों में हिस्सा लिया। इसके अलावा हाट और दुकान गतिविधि में भारती ने एक स्टॉल में बैठकर भजिए बनाने और बेचने में अन्य बच्चों की मदद की।

कागज़ पर चित्र बनाए, चित्रों में क्रेयॉन से रंग भरे, ड्रॉइंग शीट पर बतख बनाई।

व्यवहार-स्वभाव और साथियों के साथ सामंजस्य–

सत्र की शुरुआत में भारती थोड़े शर्मीले स्वभाव की थी। लेकिन धीरे-धीरे उसकी कक्षा के सभी बच्चों से जान-पहचान हो गई। वह सहपाठियों को भैया या दीदी कहकर पुकारती है, जो स्वाभाविक भी है क्योंकि वह सहपाठियों को नाम से नहीं पुकार पाती। हालाँकि, वह सहपाठियों के नाम जानती है। कभी उससे पूछा जाए कि नितिन कहाँ है तो वह नितिन की ओर इशारा करती है।

- बच्चों के साथ सामूहिक गतिविधि में जोश के साथ शामिल होती है।
- अपने लंच बॉक्स में से दूसरे बच्चों को खाना लेने के लिए कहती है।
- यदि कोई सहपाठी रो रहा हो तो भारती उसे चुप कराने की कोशिश करती है।

आगामी सत्र के लिए शुभकामनाएँ।

- कक्षा शिक्षिका

हम सबको इस रिपोर्ट कार्ड को देखकर हैरानी हो रही थी। क्या ऐसा भी कोई प्रगति पत्रक हो सकता है जो बिना अंक, बिना ग्रेड, बिना रैंक का हो? बच्चा क्या नहीं कर सकता, इस पर एक भी टिप्पणी नहीं। कक्षा में अन्य बच्चों के साथ तुलना का एक भी वाक्य नहीं। अगले साल के लिए बच्चे की अकादमिक क्षमताओं या व्यवहार में सुधार के लिए एक भी सुझाव न दिया गया हो!!

उस समय मेरे परिवार में सभी लोग आश्चर्य चकित थे। मेरे पिताजी ने कहा, "भारती धीरे-धीरे शाला के माहौल में ढलने लगी है। इसे इसी रूप में लेना चाहिए। हम लोग घर पर सीखने के अन्य तरीकों को करके नहीं देख पाए। शाला में ऐसे संसाधन भी हैं और दक्ष शिक्षक भी।" हमने भारती के रिज़ल्ट पर खुशी मनाई। भारती की मौजूदगी में आसपास के सभी लोगों को बताया गया कि हमारी भारती पास हो गई है।

कुछ परिचितों ने पूछा भी कि "भारती अगले साल भी स्कूल जाओगी न?"

भारती ने सिर हिलाकर कहा, "हाँ।"

भारती स्कूल जाती रहे, हमारा यह कमिटमेंट बना रहा। भारती लगभग आठ साल तक स्नेह निकेतन की विद्यार्थी बनी रही।

हर साल पिछले साल से फर्क रिपोर्ट कार्ड आता था। कक्षा वही होती थी। कुछ नए बच्चे स्कूल आ जाते और कुछ पहले के बच्चे आना बन्द कर देते थे।

हालाँकि, स्कूल जाने की वजह से भारती पेंसिल पकड़कर लिखने लगी हो या फर्राटे से पढ़ने लगी हो, ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। ऐसा होना हमारे लिए अपेक्षित भी नहीं था।

इस स्कूल में जाकर मेरी बहन के जीवन में कुछ बदलाव तो पक्के तौर पर आए। मसलन, अनजान लोगों के सामने आने से कतराना कम हो गया, शर्मीलापन भी कम हुआ, बहुत ज़ोर देकर मना करना या सहमति देना उसे आ गया, माता-पिता के सिवा अन्य लोगों के सानिध्य में भी वह सुरक्षित है, यह अहसास बना (शुरुआती एक साल के बाद वो अन्य बच्चों के साथ वैन में स्कूल जाने लगी थी), अन्य बच्चों के साथ मिलकर काम करना, दोस्ती बनाना जैसी बातें भी वह करने लगी थी। वो स्कूल उसके जीवन में ढेर सारी खुशियाँ लेकर आया था, वो स्कूल घर की एकरस दिनचर्या में उसके लिए बदलाव के कुछ पल लाया था।

* * *

भारती के स्कूल जाना बन्द होने के बाद भी अक्सर स्कूल की बातें हो ही जाती थीं और उसके चेहरे पर चमक आ जाती। वह कई बार कुछ काम सहजता से करती थी और इशारे से यह भी एहसास करवाती थी कि यह स्कूल में बताया या सिखाया गया था।

यदा-कदा स्नेह निकेतन की शिक्षिकाओं से मुलाकात होती तो वे भी भारती के बारे में पूछती थीं। हम भी घर आकर बताते थे कि आज अमुक मैडम से मुलाकात हुई, वे तुम्हारे बारे में पूछ रही थीं। भारती उत्सुकता से पूछती, "का?" (मतलब क्या बात हुई)। कभी भारती को लेकर बाज़ार जाते हुए हम स्नेह निकेतन शाला के सामने से गुज़रते तो ऑटो या रिक्शा धीमा करवाकर उसे उसका स्कूल दिखाते थे। चूँकि भारती के जीवन में स्कूल के बाद का पड़ाव आया ही नहीं, तो शाला की यादें ही रह जाती हैं।

मैं आज भी अक्सर स्नेह निकेतन स्कूल के सामने से गुज़रते हुए सोचता हूँ कि कहने को तो स्कूल घर से दो-तीन किलोमीटर ही दूर था, लेकिन वहाँ तक पहुँच पाना भी कहाँ आसान था।

माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

आभार: इस लेख के लिए पुरानी यादों को ताज़ा करने में मेरे माता-पिता ने भरपूर मदद की।

सभी चित्र: बंसी: जूनागढ़ की रहने वाली बंसी ने गांधीनगर से दाँतों की शल्य चिकित्सा की पढ़ाई करने के बाद TISS, मुम्बई से प्रारम्भिक शिक्षा में एम.ए. की पढ़ाई की। वह एक चित्रकार बनना चाहती हैं और संवेदनशील और अर्थपूर्ण बाल साहित्य की रचना करना चाहती हैं - खासकर गुजरात की गैर-अधिसूचित और 'बोली' भाषाओं में। वर्तमान में *एकलव्य*, भोपाल के साथ बाल साहित्य सृजन में जुड़ी हैं।

बीएलएड पाठ्यक्रम के सन्दर्भ में

एक अच्छा शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम कैसे तैयार होता है?

सुवासिनी अय्यर

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद द्वारा देश में शिक्षक-शिक्षा (teacher education) में बड़े पैमाने पर बदलाव की शुरुआत के प्रकाश में, हमें एक बुनियादी सवाल ज़रूर पूछना चाहिए, 'एक अच्छा शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम कैसे तैयार होता है?' इस सवाल का एक अन्य बुनियादी सवाल से निकट सम्बन्ध है, 'एक अच्छा शिक्षक कैसे तैयार होता है?' इस लेख में, मैं बैचलर ऑफ एलीमेंट्री एजुकेशन (बी.एल.एड.) कार्यक्रम, जो 1994 से दिल्ली विश्वविद्यालय में सफलतापूर्वक संचालित हो रहा है, में एक शिक्षक-प्रशिक्षक के रूप में अपने अनुभवों का उपयोग करते हुए पहले सवाल का जवाब देने का प्रयास कर रही हूँ। इस कार्यक्रम में, जो विभिन्न

विषयों से शिक्षकों की भर्ती करता है, मैं मनोविज्ञान में मूलभूत पाठ्यक्रम पढ़ाती हूँ, जिससे उन्हें बाल विकास, अधिगम और संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के बुनियादी सिद्धान्त समझने में सुविधा हो। मैं शिक्षक प्रशिक्षुओं की स्कूल इंटर्नशिप का पर्यवेक्षण भी करती हूँ, जहाँ मैं उन्हें समावेशी शिक्षण, मानवीय कक्षा प्रबन्धन और ऐसी ही अन्य छात्र-केन्द्रित प्रथाओं का पालन करने में सहायता करती हूँ। इस लेख में, जब मैं पहले सवाल को सम्बोधित कर रही हूँ, अप्रत्यक्ष रूप से मैं दूसरे सवाल का जवाब भी दे रही हूँ।

आलोचनात्मक समझ और शिक्षण में सक्रिय भागीदारी

यह समझना कोई बड़ी बात नहीं है कि एक शिक्षक को विषय वस्तु की गहन, सही समझ होनी चाहिए। यह कक्षा-1 के शिक्षक के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना बारहवीं कक्षा के शिक्षक के लिए है। हम पर्यावरण विज्ञान का कोई ऐसा शिक्षक नहीं रख सकते जो भलीभाँति यह नहीं जानता हो कि आकाश नीला क्यों है, या पौधे भोजन कैसे बनाते हैं। एक गणित शिक्षक को सम्भाव्यता सिद्धान्त की मूल बातें पता होनी ही चाहिए। लेकिन एक पेशेवर शिक्षक सहज बोध से अधिक जानेगा और अधिक करेगा - इस प्रक्रिया में वह लगातार विषय वस्तु को वास्तविक दुनिया से जोड़ेगा, जिससे बच्चों की जिज्ञासा बढ़ेगी। वह विषय की पाठ्यपुस्तकों के साथ गम्भीरता से जुड़ेगा और पाठ्यपुस्तक में किसी भी तरह की खामियों के प्रति सतर्क एवं सजग रहेगा। पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम विवरण विकास के बारे में उसकी सुविचारित राय होगी। एक पेशेवर के रूप में, वह अपने विषय ज्ञान को आगे बढ़ाने में सक्षम और इच्छुक होगा। सबसे बढ़कर, शिक्षक अपने विषय की भावना को आत्मसात कर चुका होगा। एक विज्ञान शिक्षक अपने विद्यार्थियों में वैज्ञानिक मूल्यों का विकास करेगा। वह विद्यार्थी द्वारा कक्षा में चर्चा में पेश किए जाने वाले किसी भी अन्धविश्वास पर तर्क करेगा। एक साहित्य शिक्षक कविता पढ़ाते समय सौन्दर्य सम्बन्धी संवेदनाएँ पैदा करेगा।

एक अच्छा शिक्षक लगभग हमेशा अपने विषय से प्यार करता है। वह अपना शिक्षण कार्य करते हुए प्रसन्न रहता है, और अपने विद्यार्थियों में वैसा ही जुनून पैदा करता है। इसलिए, अपने नाम के अनुरूप, कोई भी शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो प्रशिक्षु शिक्षक को विषय में संलग्न रहते हुए, गम्भीरतापूर्वक और आलोचनात्मक रहते हुए तल्लीन रहने का अवसर प्रदान करे। इसके बिना, शिक्षक-शिक्षा स्कूली शिक्षा प्रणाली को पूरी तरह से विफल कर देगी। बी.एल.एड. में, जो कक्षा-1 से

8वीं के लिए शिक्षकों को तैयार करता है, स्कूली विषयों पर पाठ्यक्रम पाठ्यचर्या के अभिन्न अंग होते हैं।

शिक्षाशास्त्र से साथ-साथ पढ़ाने के तरीके का प्रशिक्षण

1990 के दशक से, भारतीय शिक्षाविद् इस सवाल को लेकर चिन्तित रहे हैं कि कई वर्षों की स्कूली शिक्षा के बावजूद, बच्चे अधिगम में असफल क्यों होते हैं। यह तब भी स्पष्ट था, जैसा कि अब भी है (जैसे कि वार्षिक शिक्षा स्थिति रिपोर्ट [ASER] नियमित रूप से गवाही देती है), कि नियमित रूप से स्कूल जाने के बावजूद, बड़ी संख्या में बच्चे प्रभावी ढंग से पढ़ना, लिखना और अंकगणित नहीं सीख पाते हैं। कोरोना काल में स्कूलों के बन्द होने से समस्या काफी बढ़ गई है। वर्षों से, शिक्षाविदों ने इन पर और सम्बन्धित मुद्दों पर विचार-विमर्श किया है - क्या बच्चों को कक्षा-शिक्षण सार्थक लगता है? क्या स्कूली शिक्षा बच्चे को उपयोगी तरीके से अपनी दुनिया को समझने और उससे जुड़ने में मदद करती है? हमें कौन-सी शिक्षण विधियों का उपयोग करना चाहिए ताकि बच्चे पढ़ने, लिखने, पाठ समझने, गणित समझने आदि में सक्षम हों?

उन्होंने कई विषयों से उपलब्ध ज्ञान की ओर रुख किया - मनोविज्ञान, शैक्षणिक अध्ययन, शिक्षा, भाषा विज्ञान, साथ ही देश भर में स्कूली शिक्षा में नवीन, प्रायोगिक अभ्यास (*दिगन्तर शिक्षा एवं खेलकूद समिति* और *एकलव्य फाउण्डेशन* के कार्य, इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं)। स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में ऐसे सैद्धान्तिक कार्यों और वास्तविक जीवन के प्रयोगों से, शिक्षाविदों ने कुछ बुनियादी सिद्धान्त प्राप्त किए हैं, जिन्हें किसी भी शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम में मार्गदर्शक की भूमिका निभानी चाहिए। इन सिद्धान्तों में शामिल हैं -

- बच्चे हमेशा अपना पूर्व अर्जित ज्ञान एक नए अधिगम के अनुभव में शामिल करते हैं,
- ब्लैकबोर्ड/पाठ्यपुस्तक पर जो लिखा जाता है, वह अपने आप से बच्चों के दिमाग पर अंकित नहीं होता है,
- उन्हें जानकारी को संसाधित करने, सक्रिय रूप से इसका अर्थ निकालने की आवश्यकता होती है, तभी यह नई जानकारी वास्तव में उनकी हो पाती है, जिससे वे जुड़ सकें और वास्तविक जीवन में उसका उपयोग कर सकें।
- जब भाषा की बात आती है, तो मनुष्य मौखिक भाषा(ओं) को बोलने और समझने की जैविक क्षमता से सुसज्जित रहते हैं - शिक्षण इस जैविक प्रवृत्ति पर आधारित होना चाहिए।

जब यह परिसीमा उजागर की

जाती है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षक-शिक्षा को तदनुसार भावी शिक्षकों को तैयार करना होगा। हमारी संस्कृति में तो और भी अधिक, जहाँ आज भी, एक स्कूल शिक्षक के लिए बोर्ड पर लिखना और छात्रों द्वारा बिना सोचे-समझे उसकी नकल करना आम बात है। पिछले कुछ वर्षों में, मैंने कई स्कूली बच्चों को बिना किसी सुराग के ब्लैकबोर्ड से नकल करते देखा है। वे न तो लिखित पाठ को समझ सकते थे, न ही उस अर्थ को जो उस पाठ के माध्यम से व्यक्त करने की कोशिश की जा रही थी।

बी.एल.एड. में, हम छात्रों को मनोविज्ञान और शिक्षाशास्त्र के विभिन्न शोधपत्रों से परिचित कराते हैं, ताकि उनमें यह बुनियादी, अनुल्लंघनीय सिद्धान्त गहराई से जड़ें जमा सके। हमारे छात्र मनोविज्ञान की किताबों में पढ़ते हैं कि बचपन/शैशवकाल से वयस्कता तक बच्चों की सोच कैसे विकसित होती है। ऐसे पाठ्यक्रम हैं जो इस बात पर केन्द्रित हैं कि कैसे सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भ बच्चों के बढ़ने और सोचने के तरीके को आकार देते हैं। सैद्धान्तिक पाठ्यक्रम के साथ व्यावहारिक पाठ्यक्रम होते हैं, जिनमें विद्यार्थी स्कूलों और अन्य सेटिंग्स में और विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से आने वाले बच्चों को देखते हैं और उनके साथ संवाद करते हैं। मनोविज्ञान पाठ्यक्रम शिक्षाशास्त्र पाठ्यक्रमों की ओर ले जाते हैं, जहाँ इन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को इस्तेमाल करते हुए विभिन्न विषयों में शैक्षणिक प्रथाओं को बदलने पर ज़ोर दिया जाता है। उदाहरण के लिए, प्राथमिक वर्षों में गणित सीखने में बच्चों द्वारा वस्तुओं के साथ काम करना शामिल हो सकता है, जैसे- दशमलव प्रणाली की मूल बातें समझने के लिए, दस के समूहों में आइसक्रीम स्टिक जमाना। सामाजिक विज्ञान में, किसी ऐतिहासिक काल के बारे में सीखने में उस काल की घटनाओं का नाटकीय अभिनय या वृत्तचित्र देखना शामिल हो सकता है। हालाँकि, अन्तिम परीक्षा प्रदर्शन आधारित होती है। एक अच्छी शिक्षक-शिक्षा में एक गहन कड़ी इंटर्नशिप होगी, जिसमें प्रशिक्षुओं को सीखी गई बातों का अभ्यास करने, गलतियाँ करने, इन गलतियों पर विचार करने और एक लूप अभ्यास में पर्याप्त लम्बे समय तक बने रहने का अवसर मिलेगा। जिस तरह अस्पताल से जुड़े बिना डॉक्टरों के प्रशिक्षित होने की कल्पना करना असम्भव है, उसी तरह स्कूल इंटर्नशिप के बिना शिक्षक तैयार किए जाने की कल्पना करना भी उतना ही असम्भव है। इसके अलावा, प्रशिक्षु शिक्षकों को स्कूल प्रणाली में डाल देना ही पर्याप्त नहीं है - बारीकी से, नियमित रूप से उनके पर्यवेक्षण करने की आवश्यकता होती है। बी.एल.एड. में, एक या

अधिक पर्यवेक्षकों द्वारा प्रत्येक प्रशिक्षु का साप्ताहिक पर्यवेक्षण करना, हर एक प्रशिक्षु की शिक्षण योजना पर व्यक्तिगत फीडबैक देना, और विद्यार्थी द्वारा दैनिक स्कूल अनुभव पर अपने विचार लिखना, और बदले में उस पर शिक्षक प्रशिक्षकों से फीडबैक प्राप्त करना शामिल है।

मानवीय दृष्टिकोण

सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि शिक्षक बच्चों के बीच मौजूद एक वयस्क होता है - उनके जीवन में एक महत्वपूर्ण, शक्तिशाली मौजूदगी। बच्चे अपने शिक्षकों को करीब से देखते हैं, उनका अनुकरण करते हैं और उत्सुकता से उनका ध्यान और प्यार पाना चाहते हैं। गुस्सैल स्वभाव वाला एक अच्छा गणित शिक्षक छात्रों को गणित नहीं, बल्कि विषय से डरना सिखाता है।

शिक्षक बच्चों की भावनात्मक स्थिति को प्रतिदिन पूरे 6 से 8 घण्टे तक प्रभावित करते हैं और बनाए रखते हैं - कई वर्षों की लम्बी अवधि तक। माता-पिता के रूप में हमें पूछना चाहिए – यह भावनाएँ क्या होनी चाहिए - खुश, तनावमुक्त, सतर्क, भाग लेने की इच्छा करना, आत्मविश्वास महसूस करना, गलतियाँ करने से नहीं डरना, और सबसे महत्वपूर्ण - अगले दिन और हर दिन स्कूल जाने की इच्छा रखना? या भयभीत, चिन्तित, लज्जित महसूस करना, बोलने से डरना कि कहीं उसे दण्डित न कर दिया जाए? निश्चित रूप से, स्कूल में बच्चे भावनात्मक और सामाजिक रूप से किस स्थिति से गुज़रते हैं, यह कुछ हद तक उनके सहपाठियों पर निर्भर करता है। लेकिन, शिक्षक सर्वोच्च होता है - वह बदमाशों को सुधारने/ठीक करने, किसी उदास बच्चे को हँसाने की शक्ति रखता है, और वह किसी कम आत्मविश्वासी बच्चे में आत्मविश्वास पैदा कर सकता है। मैंने बार-बार देखा है कि कैसे किसी शिक्षक की एक सामान्य टिप्पणी - 'हाँ, तुम सही हो' - किसी छोटे बच्चे को इतने उत्साह और ऊर्जा से भर देती है कि वह शिक्षक की आज्ञा का पालन

करता है, समय पर अपना होमवर्क पूरा करता है और एक बार फिर उसके सवालों का जवाब देने के लिए अपना हाथ उठाता है। मैंने बच्चों को अपने दोस्तों के सामने अपने प्रिय शिक्षक द्वारा दिए गए एक साधारण नोटबुक रिमार्क 'गुड' का प्रदर्शन करते देखा है। मैंने ऐसे किस्से भी सुने हैं कि कैसे एक शिक्षक के नकारात्मक रवैये के कारण छात्र किसी विषय से विमुख हो गए। हमने शिक्षकों द्वारा किए जाने वाले दुर्व्यवहार के बारे में पढ़ा है, जो देश के स्कूलों में इतना दुर्लभ नहीं है।

शिक्षक के साथ सम्बन्ध बनाने का मुद्दा किशोर छात्रों के लिए और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। इन वर्षों के दौरान, जब वे अत्यधिक संवेदनशील होते हैं, उन्हें किसी ऐसे शिक्षक की आवश्यकता होती है जो उचित ढंग से प्रतिक्रिया देना जानता हो। दूसरी ओर हम जानते हैं कि कोई असंवेदनशील टिप्पणी करने, कोई कठोर सज़ा देने पर किशोर विद्रोह करने और आत्मघाती तरीकों की ओर मुड़ने में ज़्यादा देर नहीं करते हैं।

मेरा कहना यह है कि किसी भी शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षुओं को भावनात्मक, नैतिक और सामाजिक विकास के क्षेत्र में शिक्षित किया जाना होता है और विकास के वर्षों के दौरान बच्चों में पाई जाने वाली कमज़ोरियों के प्रति उन्हें संवेदनशील बनाया जाना होता है। ऐसी शिक्षा को सैद्धान्तिक शिक्षा से परे जाना होता है - क्योंकि, प्रशिक्षु शिक्षक को बच्चों के प्रति वास्तविक संवेदनशीलता विकसित करनी होगी, उनके साथ अपने दैनिक व्यवहार में

धैर्य दिखाना होगा, गलत व्यवहार को बच्चे के दृष्टिकोण से सहानुभूतिपूर्वक समझना होगा और बच्चों के बीच संघर्षों को सुलझाने की कला में महारत हासिल करना होती है। पाठ्यक्रम कवरेज, या बड़े लक्ष्य - कि बच्चे अच्छी तरह से सीखें - को नज़रअन्दाज़ किए बिना, उसे यह सब चतुराई से करना होता है। शिक्षक प्रशिक्षु को अपनी भावनाओं - क्रोध, अधीरता, चिढ़ - को नियंत्रित करना सीखना होता है, जिनमें से कुछ 'स्वाभाविक' हो सकती हैं लेकिन कक्षा में इनका प्रदर्शन बेहद गैर-पेशेवर होगा।

बाहर से स्कूल और कक्षाएँ शान्त स्थान दिखाई देते हैं, लेकिन माता-पिता और शिक्षकों के रूप में, हम जानते हैं - स्कूल और कक्षाएँ सामाजिक और भावनात्मक रूप से जटिल होते हैं, और कई बच्चे इन स्थानों पर संघर्ष करते हैं। धमकाना और लेबलिंग करना स्कूली बच्चों के बीच शायद ही असामान्य है। शिक्षक बच्चों के बीच मौजूद रहने वाला एक ऐसा शक्तिशाली वयस्क होता है जो उनके स्कूल के अनुभव को बना या बिगाड़ सकता है। और यह बहुत बड़ी बात है!

एक अच्छी शिक्षक-शिक्षा को प्रशिक्षु की क्षमता का निर्माण करना होता है, ताकि वह इन भावनात्मक और सामाजिक चुनौतियों के लिए तैयार हो सके। 20वीं सदी के अन्तिम दशक में विकसित बी.एल.एड. पाठ्यक्रम में संवाद और मानवीय सम्बन्धों के मुद्दों को सम्बोधित करने वाले पाठ्यक्रमों को शामिल करने की दूरदर्शिता थी। इसमें एक व्यावहारिक पाठ्यक्रम भी शामिल है जिसमें शिक्षार्थी अपने स्वयं के भावनात्मक और सामाजिक पालन-पोषण पर गहराई से नज़र डालते हैं, और उन्हें ऐसा इन्सान और शिक्षक बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जो दयालु हो।

जेंडर सम्बन्धी संवेदनशीलता, और संवैधानिक मूल्यों के प्रति सम्मान

16 दिसम्बर 2012 को, एक युवा महिला के साथ हुए क्रूर बलात्कार और उसकी हत्या की चौंकाने वाली खबर ने देश को झकझोर दिया। यह भयावह था कि सामान्य, युवा पुरुष इतने बर्बर हो सकते हैं। जब हमने उस युवती की मृत्यु पर शोक व्यक्त किया, तब यह भी स्पष्ट हो गया कि हमारे लड़कों और नवयुवकों को महिलाओं का सम्मान करने के लिए शिक्षित करने की तत्काल आवश्यकता है। दुर्भाग्य से, 2012 के बाद से, देश में महिलाओं के खिलाफ अपराधों में कोई कमी नहीं देखी गई है, जिससे यह चिन्ताएँ और भी गम्भीर हो गई हैं।

यदि यह चिन्ता का विषय है (और निश्चित रूप से ऐसा है), तो स्कूल शिक्षक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा

सकते हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि उन्हें जेण्डर सम्बन्धी मुद्दों की मूलभूत समझ हो। बी.एल.एड. कार्यक्रम में जेण्डर पर एक अनिवार्य पाठ्यक्रम शामिल है, और जेण्डर-संवेदनशील दृष्टिकोण अन्य पाठ्यक्रमों में भी एकीकृत किए गए हैं। पाठ्यक्रम निर्धारण में इतनी दूरदर्शिता शायद ही आकस्मिक थी। बी.एल.एड. पाठ्यक्रम देश के बेहतरीन बुद्धिजीवियों के सामूहिक प्रयासों का नतीजा था, जिनमें अपने-अपने विषयों से सम्बन्धित 5-5 अग्रणी सामाजिक वैज्ञानिक भी शामिल थे। और छात्रों के जेंडर के बारे में हमारे शिक्षक प्रशिक्षु गहराई से अध्ययन करते हैं। वे अपनी छात्राओं को कैसे समझाएँगे कि वे एसटीईएम (STEM) पाठ्यक्रमों में उत्कृष्टता प्राप्त कर सकती हैं? या किशोरों के बीच उभरती जेण्डर सम्बन्धी और लैंगिक चिन्ताओं पर स्कूल परामर्शदाताओं और विशेषज्ञों के साथ प्रतिक्रिया देंगे? ऐसी शिक्षा के बिना, स्कूली शिक्षक दुनिया को हिंसा मुक्त बनाने में कैसे योगदान दे सकते हैं, जैसी कि दिसम्बर 2012 में हुई थी?

सिर्फ जेण्डर ही नहीं, एक स्कूल शिक्षक को कई समसामयिक मुद्दों की समझ भी होना चाहिए। वह ऐसा पेशेवर होना चाहिए जो संवैधानिक मूल्य आत्मसात कर चुका हो, जो उसके शिक्षण कार्य में प्रतिबिम्बित होने चाहिएं। एक शिक्षक को सिर्फ यही पता होना पर्याप्त नहीं है कि शारीरिक दण्ड अवैध है, उसे कभी भी छड़ी इस्तेमाल करने की ज़रूरत महसूस नहीं होनी चाहिए। एक पेशेवर के रूप में, उसे किसी विद्यार्थी को किसी विशेष समुदाय पर कीचड़ उछालते हुए सुनकर व्याकुलता/परेशानी महसूस होनी चाहिए। एक शिक्षक अपने विद्यार्थियों को मूल्यों से परिचित कराता है। और ये सही मूल्य होने चाहिए।

निष्कर्ष

एक अच्छा शिक्षक तैयार करना कोई त्वरित सुधार/समाधान कार्य नहीं है। इसमें समय लगता है। स्कूली शिक्षक एक पेशेवर होता है, और ऐसा बनने के लिए उसे गहन विशेष अध्ययन कार्यक्रम पूर्ण करना होता है। वर्तमान में, देश में विभिन्न प्रकार के शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम हैं, जिनमें से सभी की प्रक्रिया में दो से चार साल लग जाते हैं। हम समझ सकते हैं कि इतना समय क्यों चाहिए। उदाहरण के लिए, बी.एल.एड. के मामले में, राष्ट्रीय शिक्षक-शिक्षा परिषद (NCTE) निर्धारित करती है कि प्रत्येक वर्ष न्यूनतम 200 कार्य दिवस होने चाहिए, जिसमें कम-से-कम 36 घण्टे साप्ताहिक अध्ययन और न्यूनतम 20 कार्य सप्ताह की अवधि की स्कूल इंटर्नशिप होनी चाहिए।

मुद्दा यह है कि, स्कूल शिक्षक

जल्दबाज़ी में तैयार करने की नहीं; बल्कि अच्छी तरह से तैयार करने की ज़रूरत है। राष्ट्रीय शिक्षक-शिक्षा परिषद द्वारा प्रस्तावित नए शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों में चार साल का एक शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम और साथ ही स्नातक बी.ए./बी.एससी./बी.कॉम. पाठ्यक्रम शामिल हैं। ऐसा एकीकृत मॉडल निश्चित रूप से शिक्षक प्रशिक्षण घटक और स्नातक पाठ्यक्रम, दोनों को कमज़ोर करेगा। यह स्पष्ट है कि पाठ्यक्रम के उद्देश्य जो चार साल के बी.एल. एड. कार्यक्रम के माध्यम से पूरे किए जाते हैं, उन्हें उतने ही वर्षों में इन दोहरे डिग्री कार्यक्रमों के माध्यम से हासिल नहीं किया जा सकता है।

हमारे आसपास की बदलती दुनिया पर प्रतिक्रियास्वरूप, शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों में बदलाव की निस्सन्देह आवश्यकता है। लेकिन उनका तर्कसंगत आधार होना चाहिए और वे मौजूदा परम्पराओं की समझ पर आधारित होने चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि राष्ट्रीय शिक्षक-शिक्षा परिषद ने सुझाव दिया है कि शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों में जलवायु परिवर्तन और सतत विकास पर अनिवार्य पाठ्यक्रम शामिल हों तो मैं यह समझ सकती हूँ। राष्ट्रीय शिक्षक-शिक्षा परिषद द्वारा प्रस्तावित वर्तमान परिवर्तनों के साथ समस्या यह है कि हम इन परिवर्तनों के लिए कोई ठोस आधार नहीं देख पाते हैं। इसके अलावा, वे वर्षों से अर्जित ज्ञान के विपरीत चलते हैं। एक नीतिगत आदेश के साथ, वह काम चौपट हो सकता है जो बी.एल.एड. सहित देश में सार्थक शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम तैयार करने के लिए हुआ है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि स्कूली शिक्षा से जुड़ा कोई भी व्यक्ति परेशान हो जाएगा।

सुवासिनी अय्यर: प्रारम्भिक शिक्षा विभाग, मिरांडा हाउस, दिल्ली विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर हैं। एक शिक्षक-शिक्षिका के रूप में इन्हें 20 वर्षों से अधिक का अनुभव है। इनकी शैक्षणिक रुचि शिक्षा के समाजशास्त्र के क्षेत्र में है।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुबोध जोशी: स्वतंत्र रूप से अनुवाद करते हैं। अखबार और पत्रिकाओं में विभिन्न विषयों पर लेख लिखते हैं और विभिन्न संस्थाओं के लिए अनुवाद कार्य करते हैं। सम्पादकीय कार्य का भी अनुभव। विकासात्मक विकलांगताओं पर आपकी एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। आप स्वयं मस्क्युलर डिस्ट्रॉफी से प्रभावित हैं।

सभी चित्र: प्रभाकर डबराल: पेशे से चित्रकार, प्रकृति प्रेमी, कहानीकार और डिज़ाइन शिक्षक हैं। लोगों की उत्पत्ति की कहानियाँ सुनना बहुत पसन्द करते हैं। स्वतन्त्र चित्रकारी करते हैं। समानुभूति, करुणा और आत्म-साक्षात्कार फैलाने में सहायक बनकर अपने जीवन को जीने लायक बनाना चाहते हैं।

प्रतापगढ़ का आदमखोर

सैयद मुस्तफा सिराज़

पहले मालूम होता तो इस बुड्ढे के चक्कर में कभी न पड़ता। इतने सारे बूढ़े लोगों को देखा, गर्मियों में नाती का हाथ पकड़ पार्क में जाकर बैठे रहते हैं और सर्दियों में घर के कोने में शॉल ओढ़कर अखबार पढ़ते हैं। हाँ, दो-चार बुड्ढे नेता बन जाते हैं और देश चलाते हैं। अखबार के लिए खबरें इकट्ठी करने के सिलसिले में उनसे थोड़ी-बहुत जान-पहचान भी हुई है। परन्तु कोई भी इस बुड्ढे की तरह पहाड़-जंगलों में जंगली घोड़े की तरह भागा-दौड़ी नहीं करता फिरता - वो भी सिर्फ अपनी दो टांगों के बल पर। या फिर किसी तितली या पंछी के पीछे बच्चों जैसे अचम्भित होकर नहीं भागता।

इस बुड्ढे की तो करतूतें ही अद्‌भुत हैं। वरना किसकी हिम्मत होगी कि जनवरी की इस कँपकँपाने वाली ठण्ड में प्रतापगढ़ के जंगल में कैमरा लेकर देर रात तक बेफिक्र घूमे? वो भी उस जंगल में जहाँ हाल में एक आदमखोर बाघ का दबदबा चल रहा हो।

जंगल में रात को कैमरे की बात सुनकर अगर कोई यह समझे कि ज़रूर फ्लैश बल्ब की सहायता से जानवरों की तस्वीरें खींची जाती हैं, तो वह बहुत बड़ी गलती होगी। यह कैमरा भी अजीबो-गरीब है। भुतहा कहने में भी मुझे कोई दिक्कत नहीं। क्योंकि उसमें फ्लैश बल्ब की कोई ज़रूरत नहीं पड़ती। फिर भी अँधेरे में लेंस के सामने बीस-पच्चीस मीटर की दूरी तक 180 डिग्री के भीतर जो कुछ भी हो, उस सबकी तस्वीर आ जाती है। शटर दबाने के लिए किसी के बैठे रहने की ज़रूरत नहीं। उसमें इलेक्ट्रॉनिक इन्तज़ाम इतना सूक्ष्म और संवेदनशील है कि लेंस के सामने बताई दूरी के अन्दर ज़मीन पर ज़रा-सा कम्पन ही काफी है। जब भी कोई जानवर ज़मीन पर चलता है तो कुछ-न-कुछ कम्पन

ज़रूर पैदा होता है। उसी से शटर क्लिक हो जाता है।

प्रतापगढ़ जंगल के बंगले में कैमरे का जाल बिछाकर जब वे रात दस बजे वापस आए, तब मैं फायर-प्लेस के सामने आराम-कुर्सी पर बैठकर कड़क कॉफी की चुस्कियाँ ले रहा था और दूसरे दिन सुबह वहाँ से भाग निकलने की तरकीब सोच रहा था। कितनी ठण्ड है, बाप रे! बिहार की ठण्ड मशहूर है, मालूम था। लेकिन प्रतापगढ़ का इलाका उत्तरी ध्रुव का छोटा भाई होगा, ये पता नहीं था।

"हेलो डार्लिंग!" उन्होंने हमेशा की तरह अभिवादन कर टोपी और ओवरकोट उतारा और मेरे पास बैठकर ज़रा हँसकर कहा, "जयन्त, मुझसे नाराज़ हो क्या?"

उन्होंने एक हाथ मेरे कँधे पर रखा और दूसरे में कॉफी का मग पकड़कर गम्भीर आवाज़ में कहा, "डार्लिंग! उम्मीद है कि कल सुबह तक मैं तुम्हें एक ऐसी कमाल की तस्वीर दिखा पाऊँगा जिसे देखकर तुम्हारी आँखें खुली-की-खुली रह जाएँगी। इसलिए कम-से-कम एक और दिन धीरज से इन्तज़ार करो। और जयन्त, ऐसा भी हो सकता है कि इस बार तुम प्रतापगढ़ से अपने दैनिक 'सत्यसेवक' के लिए एक रोमांचक खबर भी साथ ले जाओ।"

उनकी खुशनुमा बातों से ज़रा भी न पिघलकर मैंने कहा, "और किसकी तस्वीर दिखाएँगे? पिछली रात तो आपके कैमरे ने झरने से पानी पीने आए हिरणों के झुण्ड की तस्वीर खींची थी। कल ज़्यादा-से-ज़्यादा एक दुबला-सा बाघ दिख जाएगा!"

"सही कहा डार्लिंग!" बुड्ढा सफेद दाढ़ी पकड़कर हँसा। फिर स्वभाव के मुताबिक वही हाथ अपने गंजे सिर पर फहराया और कुछ नीचे फेंक दिया। देखा, लाल रंग का एक कीड़ा। कई बार इस गंजे सिर पर मकड़ी का जाल या चिड़िया की बीट भी देखी है। बूढ़े ने कीड़े की हलचल पर नज़र रखते हुए कहा, "बाघ की ही तस्वीर दिखाऊँगा। और वो भी कोई ऐसा-वैसा बाघ नहीं, वही बदनाम आदमखोर बाघ जिसे मारने के लिए सरकार ने इनाम का ऐलान किया है।"

मैंने चिढ़कर कहा, "अच्छा चलिए, मान लिया कि उस आदमखोर बाघ की तस्वीर आपके कैमरे में आ जाएगी। लेकिन आपने उन शिकारी लोगों को क्यों नहीं बताया? वे लोग बाघ को मारने के लिए परेशान हो रहे हैं। आपके सामने ही तो वे दोनों आज शाम को निकल गए। कहीं एक भैंस का बछड़ा बाँधकर पेड़ पर मचान बनाकर सारी रात बैठे रहेंगे। खामखाह ठण्ड में बेहद तकलीफ होगी।"

उन्होंने मेरी बात का जवाब देने के लिए मुँह खोला ही था कि चौकीदार ने दरवाज़े से झाँककर थोड़ा खाँसकर कहा, "हुजूर कर्नल साब! खाना तैयार

है। हुकुम होगा तो अभी लावेगा।"

"ज़रूर।" कहकर हुज़ूर कर्नल साब यानी मेरे बूढ़े दोस्त कर्नल नीलाद्रि सरकार उर्फ 'धुरन्धर बुड्ढे' ने स्वभाव मुताबिक छाती पर क्रॉस बनाया और एक सच्चे आस्थावान की तरह खाना खाने के लिए तैयार हो गया।

बंगला एकदम जंगल के बीचों-बीच था। इसीलिए सावधानी बरतने के लिए पूरे बरामदे में जंगला लगा हुआ था और इतनी ठण्ड की वजह से सारा जंगला ढका हुआ था। बरामदे के एक ओर किचन था। चौकीदार किचन के सामने खटिया बिछाकर सोता था। आजकल उस आदमखोर बाघ के आतंक की वजह से और सावधानी के लिए चौकीदार एक टॉर्च एवं सोटा पास रखता है। बूढ़े कर्नल आदमखोर के डर को नज़रअन्दाज़ कर देर रात तक जंगल में घूमते और सही सलामत लौट भी आते। चौकीदार बरामदे की ग्रिल का एक छोटा-सा हिस्सा खोलकर हुज़ूर कर्नल साब को अन्दर आने देता और फिर तुरन्त उस दरवाज़े को बन्द कर ताला लगाकर शक की नज़र से देखता रहता। मुझे लगता है, उसकी नज़र में एक बेचैनी रहती है कि वह इन्सान देख रहा है या भूत। दिन-ब-दिन कर्नल पर उसकी श्रद्धा लगातार बढ़ती चली थी।

चटनी लगी मोटी रोटियों के साथ जंगली मुर्गे के मांस से जमकर पेट पूजा की गई। खाते हुए कर्नल ने मेरी उस बात का जवाब दिया। "सही कहा जयन्त! मि. सेन और मि. दत्त को मुझे बताना चाहिए था, आप लोग झरने की घाटी में जाल न बिछाकर थोड़ा ऊपर की तरफ आकर बिछाइए। क्योंकि मुझे लगता है कि बाघ वहीं

टीले के ऊपर एक गुफा में रहता है। मैंने उसके पैरों के निशान भी ध्यान से देखे हैं। जंगल-विद्या में मुझे भी थोड़ी-बहुत जानकारी तो है ही।"

"तो कहा क्यों नहीं?"

कर्नल हँसे। "बिन पूछे खुद से चलकर कहना सही नहीं लगा। और तुमने ज़रूर ध्यान दिया ही होगा, खासकर मि. दत्त, कैसे बदतमीज़ किस्म के आदमी हैं। यहाँ आते ही हमें देखकर कैसे नाराज़ हो रहे थे। मि. सेन ने भी कैसे हमें सुनाकर कहा, 'दो-दो आदमियों का चारा रहते खामखाह भैंस के बछड़े पर पैसे खर्च करने की क्या ज़रूरत है?' यह बात मुझे चुभ गई, जयन्ता।"

उनका दुःख देखकर मैंने हलके मिज़ाज में कहा, "अहा! वो लोग कर्नल नीलाद्रि सरकार नामक मशहूर 'धुरन्धर बुड्ढे' को नहीं न जानते! अगर जानते होते, तो ज़रूर तमीज़ से बात करते। यह सोचिए, जिस जंगल में आदमखोर बाघ घूमता हो, वहाँ अगर कोई शौक फरमाते घूमने आए, वो चारा नहीं तो और क्या बनेगा?"

परन्तु कर्नल हँसे नहीं। गम्भीरता से ग्लास का बर्फीला ठण्डा पानी पूरा निगल गए।

***

रात के आखिरी पहर में कुछ शोर की आवाज़ से नींद टूटी। जागकर कुछ सेकण्ड तक मैं भोंदू की तरह ताकता रहा। लालटेन की बत्ती बढ़ाकर कर्नल व्याकुल होकर पुकार रहे थे, "जयन्ता! जयन्ता!" बाहर चौकीदार एक अनजानी भाषा में चिल्लाए जा रहा था। और फिर कोई ज़ोर-ज़ोर-से रोने लगा।

कम्बल छोड़कर बाहर निकलना आसान बात नहीं। पर ऐसी परिस्थितियों में सहज-ज्ञान काम करता है। मैं एकदम से उठ पड़ा। फिर देखा, कर्नल हाथ में लालटेन लिए आगे बढ़कर दरवाज़ा खोल रहे थे। मैं भी उनके पीछे-पीछे भागा। बरामदे में निकलते ही एक भयंकर नज़ारा दिखाई दिया। ज़मीन पर पैर फैलाए बैठे हुए थे वही शिकारी मि. दत्त और दोनों हाथों से मुँह ढँककर बच्चों जैसे रो रहे थे। उनके कपड़े ताज़ा खून से लथपथ थे। पास में दो राइफल पड़ी हुई थीं। और उनके सामने बेचारा चौकीदार खड़े-खड़े उलझी हुई आवाज़ में लगातार कुछ अर्नगल प्रलाप किए जा रहा था, जो समझ नहीं आ रहा था।

कर्नल ने मि. दत्त के कँधे पर हाथ रख उन्हें हिलाकर कहा, "शान्त हो जाइए मि. दत्त। क्या हुआ वो बताइए।" कर्नल की बात सुनकर मि. दत्त थोड़े शान्त हुए। फिर ज़ोर-से नाक झाड़ कर कहा, "ओ हो हो हो! मैं अब क्या करूँ? क्या करूँ मैं अब? मेरे जीवनभर का साथी मेरा जिगरी दोस्त अमल... वो!"

कर्नल ने कहा, "प्लीज़ मि. दत्त!

शान्त हो जाइए, शान्त हो जाइए। हुआ क्या, वो बताइए।"

हेकड़ी के साथ मि. दत्त ने टेढ़े मुँह से कहा, "क्या हुआ समझ नहीं पाए, जनाब? अमल को बाघ ने मार डाला। ओ हो हो! उसकी पत्नी और बाल-बच्चों को मैं अपनी शक्ल कैसे दिखा पाऊँगा?"

अब तक यही अन्दाज़ा लगाया था। कर्नल उनके कँधे से हाथ हटाकर उठ खड़े हुए। फिर कहा, "सर्वनाश! मि. सेन को आदमखोर बाघ ने मार डाला! पर यह सब हुआ कैसे मि. दत्त? आप दोनों क्या एक ही मचान पर थे?"

दत्त साहब रुमाल से आँख-नाक पोंछकर बोले, "एक ही मचान पर थे। पर वह बाघ कब चुपके से पेड़ पर चढ़ आया, पता नहीं चला। मेरी हल्की नींद-सी लग गई थी। अचानक अमल की चीख से मेरी आँख खुली। टॉर्च जलाते ही देखा, उफ! भयानक दृश्य था। बाघ अमल की गर्दन मुँह में दबोचकर कूद गया।"

कर्नल ने कहा, "आपने ज़रूर गोली नहीं चलाई? उसकी राइफल भी तो साथ लाए हैं।"

दत्त साहब लम्बी साँस लेकर बोले, "मैं सदमे में था। तभी टॉर्च और राइफल नीचे गिर गए। उफ! ओ हो हो हो! अमल!"

"फिर? फिर क्या हुआ?" मैंने घुटती साँस के साथ पूछा।

मि. दत्त ने कहा, "फिर मैं कैसे भागकर आया हूँ, वो बस मैं ही जानता हूँ। यह देखिए कितनी जगह खरोंचें लगी हैं। और यह देखिए, कितना खून। अमल का खून। ओ हो हो हो!"

कर्नल थोड़ा सोचकर बोले, "बहुत देर हो चुकी है। अब तक बाघ अपना शिकार लेकर चला गया होगा। सुबह तक इन्तज़ार करने के अलावा कोई उपाय नहीं है..."

बाकी रात और सो नहीं पाए। बगल के कमरे से दत्त साहब के शोक-प्रकट करने की फुसफुसाहट लगातार सुनाई दे रही थी। कर्नल और मैं फायरप्लेस के सामने बैठे रहे। बूढ़ा कर्नल एकदम चुपचाप था। कई सवाल पूछने पर भी कोई जवाब नहीं मिला। आदतन दाढ़ी या गंजे सिर पर हाथ फेरते, कभी आँखें मूँदकर छाती पर क्रॉस बनाते।

जंगल और पहाड़ को घना कुहासा घेरे हुए था। धूप बढ़ने पर कुहासा कम हो गया। तब कर्नल मुझे साथ लेकर निकले। दत्त साहब को देखा, वे धूप में लॉन में बैठे हुए थे। हाथ में राइफल थी। हिंसक शक्ल। लाल आँखें। कर्नल ने बुलाया, "आइए, मि. दत्त। देखें, आपके साथी की लाश मिलती है या नहीं।"

दत्त साहब उठे। "उस शैतान को खतम किए बिना मैं कलकत्ता लौटने वाला नहीं। यही मेरी प्रतिज्ञा है।"

कर्नल ने चलते हुए कहा, “हमें सबसे पहले मचान की ओर ही चलना चाहिए।”

मि. दत्त ने सिर्फ “हूँ” कहा।

बंगले से झाड़ियों भरी ढलान से उतरकर हम लोग एक छोटी-सी नदी के तट पर पहुँचे, जो थोड़ी ही दूरी पर झरने से बहकर आती है। पत्थर के ऊपर से साफ पानी का बहाव चला आ रहा था। थोड़ी देर उसके किनारे-किनारे चलने के बाद मि. दत्त ने कहा, “वो रहा, वहाँ।”

चारों तरफ घने पेड़ पौधे थे और बीच में थोड़ी-सी खाली घास वाली ज़मीन थी। एक भैंस का बछड़ा आराम-से घास खा रहा था। मैंने सोचा, यही चारा होगा। उस जगह पर पहुँचकर हम दंग रह गए। मचान के ठीक नीचे एक कटी-फटी लाश पड़ी थी। फिर मि. दत्त ज़ोर-से चिल्लाए और दौड़कर लाश के पास घुटनों के बल बैठ गए और रात की तरह ज़ोरों-से रोने लगे।

कर्नल और मैं आगे बढ़े। शिकारी मि. सेन के गले पर गहरे चोट के निशान थे और छाती का ऊपरी हिस्सा नुकीले नाखून की चोट से बुरी तरह ज़ख्मी था। पूरा पुलओवर फटा हुआ था। हर जगह जमे हुए काले खून के निशान थे। कर्नल ने सिर उठाकर ऊपर मचान की तरफ देखा। फिर अचानक पेड़ पर चढ़ने लगे। पेड़ के तने और टहनियों पर खून के निशान दिख रहे थे।

थोड़ी देर बाद कर्नल ने मचान से उतरकर कहा, “आपने सही कहा मि.

दत्त। बाघ ने अचानक मचान के ऊपर ही उनपर हमला किया। उन्हें बचाव का वक्त नहीं मिला। तो ये लाश...”

दत्त साहब ने शान्त होकर कहा, “चौकीदार को कुछ लोगों को साथ लाने को कह दिया है। जीप में कलकत्ता ले जाऊँगा। पर पता नहीं, अमल की पत्नी के सामने कैसे खड़ा हो पाऊँगा। उफ!”

कर्नल थोड़ी देर कुछ सोचते हुए मचान की तरफ ताकते रहे। फिर अचानक घूमकर बोले, “देखिए मि. दत्त, मुझे लगता है कि आपके साथी मि. सेन को जिस बाघ ने मार डाला, वह आदमखोर नहीं था।”

मि. दत्त ने भौंहें चढ़ाकर कहा, “आप क्या शिकारी हैं? कैसे पता कि वह आदमखोर बाघ नहीं था? आदमखोर बाघ के अलावा कोई बाघ इस तरह चुपके-से पेड़ पर चढ़कर शिकारी पर हमला नहीं करता।”

कर्नल ने कहा, “बिलकुल ठीक। लेकिन इस जंगल में और बाघ भी तो हो सकते हैं।”

दत्त साहब ने भड़ककर कहा, “जिस बात की जानकारी न हो, उस पर ज़्यादा बकवास मत कीजिए।”

कर्नल डाँट खाए सहमा हुआ चेहरा लेकर वहाँ से हट गए। “चलो जयन्त, लाश तो मिल गई। अब हम अपने काम पर लग जाते हैं।”

झरने के किनारे आकर मैंने कहा, “कितना बदतमीज़ आदमी है! ज़िद्दी। एक हमबग!”

कर्नल ने हँसकर कहा, “शिकारियों को थोड़ा गुस्सा आना स्वाभाविक है। जाने दो जयन्त! तुम बंगले में लौटकर विश्राम करो। जानता हूँ, इस बुड्ढे के पीछे भाग-दौड़ करना तुम्हें पसन्द नहीं।”

“हाँ, सो तो है। पर आप कहाँ जा रहे हैं?”

“फिलहाल कैमरा ले आता हूँ।” कहकर कर्नल तेज़ी-से आगे बढ़ गए। मैं बंगले में लौट आया।

कर्नल दोपहर तक लौटे। फिर खा-पीकर फिल्म डेवलप करने बाथरूम में चले गए। वही उनका डार्करूम था। पिछली रात नींद पूरी नहीं हुई थी। इसलिए मैं कम्बल ओढ़कर सो गया। अचानक कर्नल के पुकारने से नींद टूटी। “जयन्त! जयन्त! सब सामान जल्दी समेट लो। हम लोग अभी रवाना होंगे। जीप आ गई है।”

मैंने कहा, “ये क्या! जंगल की प्यास इतनी जल्दी मिट गई? या फिर आदमखोर बाघ के डर से? और जीप कहाँ से मिली? हम लोग ऐसे गलत वक्त में किस जहन्नुम में जाएँगे?”

धुरन्धर बुड्ढे ने रहस्मयी हँसी हँसते हुए कहा, “वेट, वेट डार्लिंग। फिलहाल सारे सवालों के जवाब में मेरी रात की उपज तुम्हें भेंट देना चाहता हूँ। ये लो।”

हाथ बढ़ाने पर जो मिला, वो एक छोटा-सा फोटोग्राफ था। किन्तु देखते ही मैं चौंक उठा। ये क्या! देखता हूँ कि मि. दत्त घुटने मोड़कर पत्थर की दरार में हाथ डालकर कुछ कर रहे हैं। मैंने हैरान होकर कहा, "इसका मतलब? कल रात तो वो दोनों मचान पर थे – मतलब मि. दत्त और मि. सेन! लेकिन यहाँ तो दिख रहा है कि मि. दत्त अकेले कुछ कर रहे हैं।"

कर्नल फिर से अजीब ढंग से हँसे। "जल्दी-से तैयार हो जाओ। तुम्हें जो दिखाने का वादा किया था, सो दिखा दिया। बाकी प्रतापगढ़ टाउनशिप में जाकर दिखाऊँगा।"

"पर आपने तो आदमखोर बाघ दिखाने का वादा किया था!"

"वही तो दिखाया।" कहकर बूढ़े जासूस साहब खुद ही मेरी कम्बल-बेडिंग समेटने लगे। मैं हक्का-बक्का रह गया। थोड़ी देर बाद जीप में चढ़ते वक्त कर्नल ने कहा, "दरअसल, जिस बूढ़े और दुर्बल बाघ ने इस इलाके में पाँच लोगों को मारकर खाया था, वो अपनी पहाड़ी गुफा में स्वाभाविक मौत से मरा पड़ा है। कल उसे खोज आया हूँ। ऐसे भी कभी किसी शिकारी की गोली खाने की वजह से बाघ की हालत काफी शोचनीय हो चुकी थी। अच्छा चलो, अब जीप पर चढ़ जाओ वत्स, यथास्थान पहुँचकर सब समझ जाओगे।"

प्रतापगढ़ टाउनशिप पहुँचने में तकरीबन शाम हो गई। हैरान होकर देखता हूँ कि जीप थाने में घुस रही है। जी घबराने लगा। तो क्या मि. सेन बाघ के हाथों नहीं मरे? क्या मामूली कत्ल का मामला है?

हूँ, ठीक वही मसला निकला। मि. दत्त लाल आँखें लिए हिंसक शक्ल बनाए बैठे हुए थे। हाथों में हथकड़ी थी। टेबल को चारों ओर से घेरे हुए पुलिस के कुछ अफसर थे। हमें देखकर एक पुलिस अफसर चिल्ला उठा, "हेलो कर्नल!"

कर्नल ने अपने कोट की पॉकेट से तस्वीरों का एक गट्ठा आगे बढ़ाकर कहा, "ये मेरे अद्भुत कैमरे की रात की फसल है, मि. शर्मा। एक तस्वीर में मि. दत्त बाघ के दो नाखून छिपाते हुए दिखाई देंगे। फिल्म पर समय भी सांकेतिक रूप में छप जाता है। रात के दो बजकर तीस मिनट। यह देखिए!"

मि. शर्मा ने हँसकर कहा, "आपके निर्देशानुसार सही जगह से दो मर्डर-वेपन जब्त किए गए हैं। डेडबॉडी मॉर्ग में भेजी जा चुकी है। रिपोर्ट बस आती ही होगी।" कहकर उन्होंने ड्रॉअर से कागज़ में मुड़े रखे बाघ के पंजे के नाखून जैसे दो खतरनाक अस्त्र निकाले। उनपर खून के निशान काले पड़ गए थे।

मि. दत्त चट्टान की तरह सिर झुकाकर बैठे थे।

***

देर रात को सर्किट हाउस के एक कमरे में कर्नल से आमना-सामना हुआ। पूछा, "आखिर दत्त साहब ने अपने दोस्त का कत्ल क्यों किया?"

कर्नल ने जवाब दिया, "कलकत्ता के मशहूर 'होज़री दत्त एंड सेन' का नाम नहीं सुना जयन्त? अरे, वही बाघ-मार्का चड्डी-बनियान आदि वाले। जितना समझ में आया, उससे लगता है कि दत्त साहब भीतर ही भीतर अपने पार्टनर मित्र सेन साहब को धोखा देकर अकेले मालिक बनने का षड़यंत्र रच रहे थे। पिछली रात मैंने उन्हें दबी आवाज़ में कुछ बहस करते हुए सुन लिया था। खैर, उस षड़यंत्र का ही नतीजा था, यह हत्याकाण्ड। ज़रा सोच के देखो जयन्त, मि. दत्त ने क्या कमाल की तरकीब निकाली थी! आदमखोर बाघ का शिकार करने के सिलसिले में किसी आदमी का मारा जाना कितना स्वाभाविक लगता। सिर्फ इस बूढ़े प्रकृति-प्रेमी और उसके अद्‌भुत कैमरे ने इसमें विघ्न डाल दिया। पर डार्लिंग जयन्त, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अगर तुम इस बूढ़े को बेरहमी से छोड़ न जाओ, तो मैं तुम्हें कुछ ही दिनों में सचमुच का बाघ ज़रूर दिखाऊँगा।"

दाढ़ी वाले गंजे 'धुरन्धर बुड्ढे' कर्नल नीलाद्रि सरकार ने एक सिद्ध पादरी की तरह अपने चौड़े सीने पर एक क्रॉस बनाया। फिर अस्पष्ट आवाज़ में कहा, "आमीन! आमीन!"

सैयद मुस्तफा सिराज़ (1930-2012): बंगाली भाषा के विख्यात साहित्यकार थे। इनके द्वारा रचित उपन्यास *अलीक मानुष* के लिए उन्हें सन् 1994 में 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। उन्होंने लगभग 150 उपन्यास और 300 लघु कथाएँ लिखी हैं।

बांगला से अनुवाद: कविता मित्रा: हैदराबाद के एक स्कूल में भौतिक विज्ञान पढ़ाती हैं। विज्ञान और गणित में रुचि है। अलग-अलग तरह की किताबें पढ़ने का शौक है।

यह कहानी किताब *किशोर कर्नल समग्र,* प्रथम भाग, दे'ज़ पब्लिशिंग, कोलकाता (नवम्बर 2005) से साभार।

सभी चित्र: हबीब अली: रियाज़ एकेडमी, भोपाल से इलस्ट्रेशन का कोर्स किया है। ग्वालियर के गवर्मेंट इंस्टीट्यूट ऑफ फाइन आर्ट्स से फाइन आर्ट्स में स्नातक। रोज़मर्रा की ज़िन्दगी की फोटोग्राफी का शौक। एनसीईआरटी, रूम टू रीड, तूलिका बुक्स, डकबिल, इकतारा, एकलव्य जैसे प्रकाशकों के साथ काम कर रहे हैं।

सवालीराम

सवाल: पतंग धागे से बँधी होने पर ऊपर उड़ती है जबकि धागा टूटने पर नीचे आ जाती है। ऐसा क्यों?

– देवेश शांडिल्य, होशंगाबाद, म.प्र.

जवाब: हम देखते हैं कि जब तक डोर बँधी रहे, तनी रहे, तब तक पतंग उड़ती रहती है। लेकिन जब डोर टूट जाती है तो पतंग ज़मीन पर आ जाती है। दोनों स्थितियों में बयार (wind) तो वैसी ही है। तो पतंग क्यों टपक जाती है? यदि हम किसी ऊँची बिल्डिंग की छत पर चढ़कर या किसी ऊँची टेकरी पर से पतंग को छोड़ दें, चाहे डोर बँधी हो या न बँधी हो, तो वह आकाश में टिकी नहीं रहती। उसे किसी पतंगबाज़ की कुशल मदद ज़रूरी होती है। तो, पतंग कैसे ऊपर उठती है और कैसे आकाश में टिकी रहती है?

पतंग का उड़ना-गिरना समझने के लिए, उस पर लगने वाले सारे बलों का विश्लेषण ज़रूरी है और साथ ही उन बलों की आपस में अन्तर्क्रियाओं को भी समझना होगा। शुरुआत उन बलों को पहचानने से करते हैं। आपने ध्यान दिया होगा कि पतंग के उड़ने और ऊपर उठने के लिए हवा का बहना यानी बयार ज़रूरी होती है। लेकिन बयार अकेली पतंग को उड़ाने और ऊपर ले जाने के लिए पर्याप्त नहीं होती। और तो और, ज़रूरी नहीं कि पतंग बयार की दिशा में ही उड़े। डोर की भूमिका भी इसमें निर्णायक होती है।

हम अपने अनुभव से जानते ही हैं कि जब पतंग उड़ना शुरू करती है, तो उसकी डोर पर लगने वाला तनाव (T) बदलता जाता है। ऊँची उड़ती पतंग डोर पर ज़्यादा तनाव लगाती है। यह तनाव दो काम करता है: उर्ध्वाधर दिशा में यह नीचे की ओर काम करता है और क्षैतिज दिशा में यह प्रणोद (thrust, F) प्रदान करता है। पतंग का उन्मुखीकरण करने में और उछाल (lift) उत्पन्न करने में इस प्रणोद की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। पतंगबाज़ इसके लिए डोर को खींचता/खींचती है।

पतंग को उड़ने के लिए ऊपर की ओर लगने वाला एक बल ज़रूरी है। इसे उछाल या लिफ्ट (lift - L) कहते हैं। उछाल हवा के बहने से पैदा होता है। पतंग सीधी खड़ी (या उर्ध्वाधर) दिशा में तो उड़ती नहीं। पतंग तो

उर्ध्व दिशा से थोड़ी झुककर उड़ती है। उपयुक्त उन्मुखीकरण होने पर हवा पतंग के दोनों ओर अलग-अलग वेग से बहती है – हवा पतंग की निचली सतह के मुकाबले ऊपरी सतह पर से थोड़ी तेज़ बहती है। जब ऐसा होता है तो पर्याप्त उछाल पैदा होता है (बर्नोली के सिद्धान्त के अनुसार)। यही ऊपर की ओर ले जाने वाला बल होता है जो पतंग को ऊँचाई पर ले जाता है। पतंगबाज़ का हुनर यही स्थिति हासिल करने में लगता है और इसे हासिल करने का साधन है, डोर।

गुरुत्व बल यानी पतंग का वज़न (W) तो पूरे समय एक-समान रहता है और हवा का उत्प्लावन बल (buoyancy - B) भी कमोबेश अपरिवर्तित रहता है। एक और बल

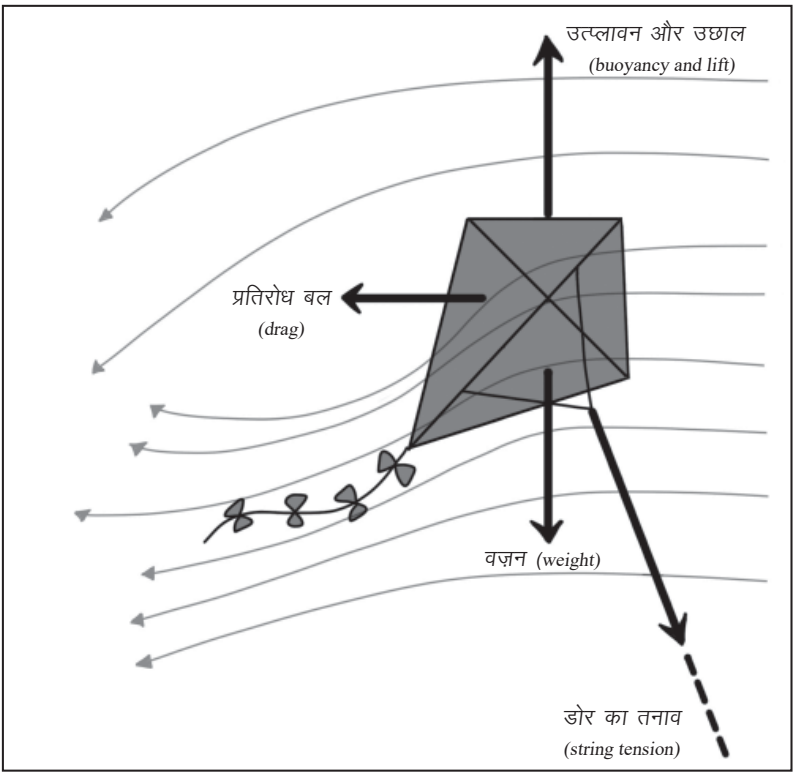

चित्र: बंसी

चित्र-1: *ऊपर उठती पतंग जो पतंगबाज़ से दूर की ओर जा रही है और उस पर लगने वाले बल।*

होता है जिसे प्रतिरोधी बल यानी ड्रैग (drag - D) कहते हैं। यह भी हवा के कारण लगता है। नाम से ही ज़ाहिर है कि प्रतिरोध बल हमेशा गति का विरोध करता है और लगभग घर्षण के समान होता है। अन्तिम स्थिर अवस्था के निर्धारण में प्रतिरोधी बल महत्वपूर्ण किरदार होता है। यह लगभग वेग (यानी हवा के सापेक्ष वेग) के समानुपाती होता है।

पतंग पर लगने वाले विभिन्न बल चित्र-1 में दर्शाए गए हैं।

पतंग की गति को समझने के लिए हमें उर्ध्व और क्षैतिज दिशा में लग रहे बलों का विश्लेषण अलग-अलग करना होगा।

उर्ध्व दिशा में बलों के घटक हैं: उछाल यानी लिफ्ट और उत्प्लावन (ऊपर की ओर), वज़न और तनाव का उर्ध्व घटक (नीचे की ओर)।

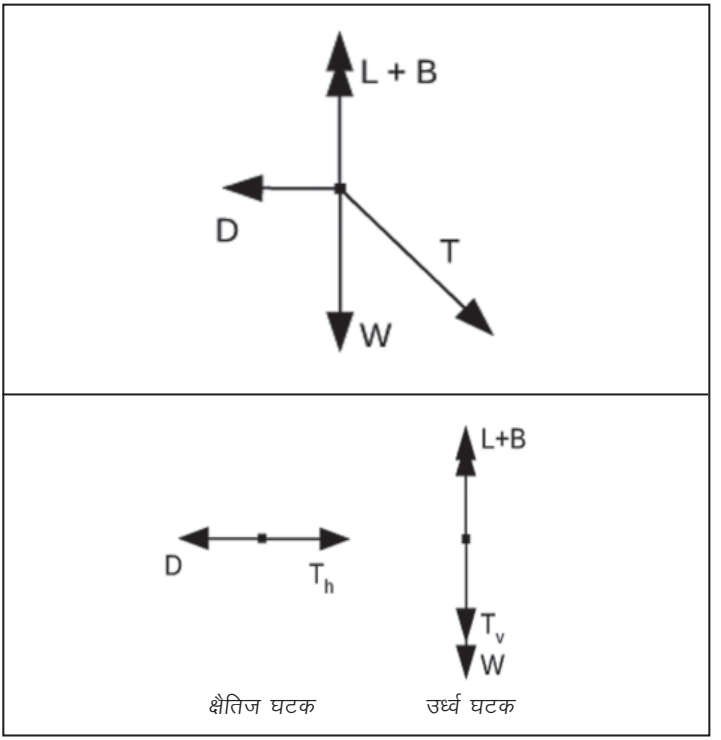

चित्र-2: *मुक्त निकाय आरेख (फ्री बॉडी डायग्राम) और हवा में स्थिर पतंग पर विभिन्न बलों के क्षैतिज और उर्ध्वाधर घटक; उत्प्लावन बल (B), गुरुत्व बल यानी वज़न (W), डोर का तनाव (T), उछाल (L), प्रतिरोध बल (D), T_h और T_v (यानी डोर के तनाव के क्षैतिज व उर्ध्व घटक)।*

बातें बलों की

चूँकि बातें बलों की होंगी, तो हमें कोई तरीका चाहिए जिनकी मदद से हम उन्हें दर्शा सकें, चित्रित कर सकें।

बल एक सदिश राशि होती है – अर्थात् इसका एक परिमाण होता है (यानी कम-ज़्यादा) और एक दिशा होती है। जैसा कि आप जानते ही हैं, संहति या द्रव्यमान के मामले में मात्र परिमाण बताने से काम चल जाता है लेकिन किसी वस्तु का विस्थापन या वेग बताना हो तो उसके परिमाण के साथ-साथ दिशा भी बतानी होती है। जब किसी वस्तु (जैसे पतंग) पर एक से अधिक बल काम कर रहे हों, तो उन्हें एक रेखाचित्र से दर्शाया जा सकता है। इस तरह के रेखाचित्र में सम्बन्धित वस्तु या पिण्ड (जैसे इस मामले में पतंग) को एक बिन्दु के रूप में निरूपित किया जाता है और बलों को तीरों के माध्यम से दर्शाया जाता है। तीर की दिशा बल की दिशा में होती है और उसकी लम्बाई बल के परिमाण की द्योतक होती है। इसे एक मुक्त निकाय आरेख (free body diagram) कहते हैं।

यह देखने के लिए कि कुल परिणामी बल क्या है, हमें बलों को जोड़ना पड़ता है। इस सन्दर्भ में मुक्त निकाय आरेख बहुत मददगार होता है। इन्हें जोड़ने के लिए हम जिस तकनीक का इस्तेमाल करते हैं, उसे प्रोजेक्शन ऑफ वेक्टर्स (सदिशों का प्रक्षेपण) कहते हैं। प्रक्षेपण को समझने के लिए किसी दिशा (जैसे उत्तर-पूर्व) के बारे में सोचिए। यह हमारी मानक सन्दर्भ दिशाओं – पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण - से अलग है। दरअसल, उत्तर-पूर्व या दक्षिण-पश्चिम हमारी मानक दिशाओं के मिश्रण हैं। हम उत्तर-पूर्व के बारे में 'आधा उत्तर' और 'आधा पूर्व' के रूप में सोचते हैं – यानी 'उत्तर' को 'पूर्व' में जोड़ देने से 'उत्तर-पूर्व' मिल जाता है। यदि हम 'उत्तर-पूर्व' को 'उत्तर-पश्चिम' में जोड़ेंगे तो हमें 'उत्तर' मिलेगा क्योंकि 'पूर्व' और 'पश्चिम' एक-दूसरे को निरस्त कर देंगे। ऐसा करते हुए हमने सहज रूप में यह मान लिया है कि उत्तर-पूर्व वास्तव में उत्तर और पूर्व से मिलकर बना है (और इसी प्रकार से उत्तर-पश्चिम भी उत्तर और पश्चिम से जुड़कर बना है)। ज़रा सोचिए कि उत्तर-उत्तर-पूर्व या पश्चिम-उत्तर-पश्चिम जैसी दिशाओं का विभाजन कैसे करेंगे।

इस 'विभाजन' को सदिशों के सन्दर्भ में 'प्रोजेक्टिंग' कहते हैं। यदि हम इस बात को ध्यान में रखें, तो सदिशों को जोड़ना आसान हो जाएगा। वर्तमान चर्चा में सदिशों को दो दिशाओं में प्रोजेक्ट करके जोड़ेंगे – खड़ी (उर्ध्व) और आड़ी (क्षैतिज)।

क्षैतिज दिशा में बलों के घटक हैं: डोर के तनाव के कारण प्रणोद और प्रतिरोधी बल। अर्थात् बलों के कुल 6 घटक हैं – चार उर्ध्व और दो क्षैतिज।

जब पतंग उड़ती है तो अन्ततः वह एक स्थिरता प्राप्त कर लेती है। स्थिर अवस्था में बलों के चार उर्ध्व घटक आपस में और दो क्षैतिज घटक आपस में सन्तुलित होते हैं। यह चित्र-2 में दर्शाया गया है।

यदि डोर कट जाए ('काय पो चे') तो प्रणोद अचानक शून्य हो जाता है। इसका असर उछाल यानी लिफ्ट पर पड़ता है क्योंकि लिफ्ट हवा के बहने और प्रणोद का मिला-जुला असर है। इसके अलावा, हवा के हल्के-फुल्के झोंकों की वजह से पतंग का उन्मुखीकरण भी भटक जाता है। और उसी क्षण, उर्ध्व दिशा में सिर्फ दो बल बचेंगे – एक गुरुत्व जो नीचे की ओर काम करता है और दूसरा उत्प्लावन जो ऊपर की ओर लगेगा। लेकिन पतंग हवा से तो भारी होती है। लिहाज़ा, थोड़े समय में गुरुत्व की जीत होगी और पतंग धूल चाटने लगेगी।

वैसे तो हम अपने तजुर्बे से जानते ही हैं कि कई अन्य कारक भी हैं जो पतंग की उड़ान को प्रभावित करते हैं – जैसे पतंग का आकार, उसकी पूँछ, वगैरह, वगैरह। लेकिन यहाँ ऐसे कई बिन्दुओं पर ध्यान नहीं दिया गया है। पतंग लेकर मैदान में उतरेंगे तो और बातें करेंगे!

भास बापट: भारतीय विज्ञान शिक्षा एवं अनुसन्धान संस्थान (IISER), पुणे में भौतिकी पढ़ाते हैं। भास भारत के सौर मिशन 'आदित्य एल 1' का हिस्सा रहे और विज्ञान शिक्षा में अथाह रुचि रखते हैं। एक लम्बे अरसे से *एकलव्य* संस्था के साथ जुड़े हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

इस बार का सवाल: मधुमक्खी के छत्ते के प्रकोष्ठों का आकार षट्कोण क्यों होता है?

– प्रक्षाली देसाई, झाबुआ, म.प्र.

आप हमें अपने जवाब sandarbh@eklavya.in पर भेज सकते हैं।

प्रकाशित जवाब देने वाले शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं अन्य को पुस्तकों का गिफ्ट वाउचर भेजा जाएगा जिससे वे पिटाराकार्ट से अपनी मनपसन्द किताबें खरीद सकते हैं।

RNI No.: MPHIN/2007/20203

प्रकाशक, मुद्रक, टुलटुल बिस्वास द्वारा निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन की ओर से, एकलव्य, जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (म.प्र.) से प्रकाशित तथा भण्डारी प्रेस, ई-2/111, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462 016 (म.प्र.) से मुद्रित, सम्पादक: राजेश खिंदरी।